धर्मायण

मूल्य : 45 रुपये

अंक 136

आश्विन,

2080 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

कार्तिक मास

जग-मग दीप जले

महावीर मन्दिर परिसर में अस्थायी पंडाल में दुर्गापूजा

धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. पितरों का पर्व : दीपावली - सम्पादकीय 3
2. हनुमान्-जन्मोत्सव की चार स्तुतियाँ -राजर्षि कवि बाबू गोपीश्वर सिंह 8
3. कार्तिक मास : भगवान् विष्णु का मास - म.म. विद्यापति कृत 'वर्षकृत्यम्' से 11
4. पितृयज्ञ का वैदिक विवेचन - डॉ. राधानंद सिंह 19
5. पितरों का तीर्थ : गया - श्री रवि संगम 24
6. विचित्र लिपियों में लिखी पोथियाँ और पत्र - डॉ. व्रजमोहन जावलिया 29
7. भगवान् श्रीराम द्वारा क्रियायोग का वर्णन - डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता 43
8. स्वामी रामतीर्थ - डॉ. राजेन्द्र राज 46
9. श्रीगणेशजी के बारह नाम - डॉ. शारदा नरेन्द्र मेहता 48
10. सोमरस : मिथक एवं वास्तविकता - डॉ. मयंक मुरारी 52
11. अजर-अमर हनुमान् - श्री संजय गोस्वामी 64
12. मनीषी पं. गोविन्द झा का महाप्रयाण- श्रद्धाञ्जलि 69
13. मन्दिर समाचार, अक्टूबर, 2023ई. 77
14. व्रत-पर्व, कार्तिक, 2080 वि. सं. 78

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 136

कार्तिक, 2080 वि. सं.

29 अक्टूबर-27 नवम्बर, 2023ई.

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार :

महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना—800001, बिहार
फोन: 0612—2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:
dharmayanhindi@gmail.com

Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 135, आश्विन, 2080 वि.सं.

धर्मायण पत्रिका का 135वाँ अंक पितृ-भक्ति विशेषांक को सूक्ष्मेक्षिका दृष्टि से पढ़ने का प्रयास किया गया। यथार्थ रूप में इस अंक की जितनी भी प्रसंशा की जाय वह काफी नहीं है। महावीर मन्दिर एवं इससे सम्बन्धित सभी प्रबन्धनों को सुव्यवस्थित कर विश्वस्तरीय कीर्तिमान स्थापित कराने में अहम भूमिका निभाने वाले इस संस्था के संरक्षक आचार्य, कुशल प्रशासक एव पुर्व कुलपति महात्मा किशोर कुणाल जी को कोटि-कोटि साष्टांग प्रणाम। आचार्य जी ने ही इस धर्मायण पत्रिका का श्रीगणेश किया, साथ ही देश के मूर्धन्य विद्वानों को आग्रह पूर्वक उत्कृष्ट आलेख के लिए आमंत्रित कर पत्रिका को विश्वस्तरीय स्थान दिलाया। मैं इस पत्रिका का अवलोकन इसके प्रारम्भिक काल से ही करता आ रहा हूँ। उत्तरोत्तर इसका स्वरूप एक ग्रन्थ का स्थान ले चुका है। वर्तमान परिदृश्य में आचार्य जी ने पंडित भवनाथ झा जी के रूप में एक ऐसे सम्पादक का चयन किया है , जिनका अद्भुत वैदुष्य आलेखकों एवं पाठकों के लिए पाथेय सिद्ध हुआ है।सचमुच ,एक ही व्यक्ति लिपि विज्ञान से लेकर विभिन्न शास्त्रों का गम्भीर ज्ञान अपने आप में संजोये हुए हर क्षेत्र में अपनी दक्षता का सफलता पूर्वक परिचय कराने में सक्षम हों, ऐसा व्यक्तित्व विरले मिलता है। जब से इन्होंने धर्मायण पत्रिका का सम्पादकीय उत्तरदायित्व सम्भाला है, तब से पत्रिकाओं में योग्य विद्वानों द्वारा स्वयं अपने निर्देशन में गवेषणात्मक आलेखों को तैयार कराकर पाठकों के मानस पटलपर प्रत्येक अंक को धर्मग्रन्थ के स्वरूप में रेखांकित कर दिया है।

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.–+91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

अग्रिम अंक अग्रहायण मास का होगा। इस अंक के लिए विवाह-विशेषांक प्रस्तावित है। विवाह एक संस्कार है, जो आज हिन्दी पट्टी में फिल्मी प्रभाव के कारण एक समारोह मात्र बनकर रह गया है। वर्तमान युवा पीढ़ी तो केवल विवाह का विरोध जताने के लिए लिव-इन-रिलेशनशिप पर उतर आये हैं, जो मात्र एक विरोधवादी स्वर है। हमारे सनातन धर्म में यद्यपि आठ प्रकार के विवाह गिने गये हैं, किन्तु उनमें से केवल चार विधियों को स्वच्छ माना गया है। शेष चार अधम कहे गये हैं। इस पर हमारे शास्त्रकारों के वचनों को आज के सन्दर्भ में व्याख्यायित करनी चाहिए।

विस्तार से– पृ. 28 पर

प्रस्तुत पितृ-भक्ति विशेषांक के सम्पादकीय आलेख में विद्वान् सम्पादक पंडित भवनाथ झा जी ने खासकर युवा पीढ़ी के सनातनियों की ओर संकेत करते हुए चिन्ता प्रकट की है कि आज हमारा परिवेश ऐसा बनता जा रहा है कि लोग अपने माता पिता व वुजुर्गों से बहुत दूर होते जा रहे हैं। हमारे ही बीच में रहने वाले तथाकथित बुद्धिजीवी सनातन धर्म की मान्य परम्पराओं से जोडने के बजाय हमें विधर्मी बनाने की शिक्षा दे रहे हैं।

शेष पृ. 76 पर

पितरों का पर्व : दीपावली

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

पुराणों की परम्परा में भी दीपावली के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ मिलतीं हैं। यहाँ पुराणों के उपलब्ध मुम्बई संस्करण में प्राप्त कुछ कथाएँ तथा माहात्म्य संकलित हैं। इन कथाओं के अतिरिक्त भी दीपावली के सम्बन्ध में सामग्री मिलने की प्रचुर सम्भावना है। इसके माहात्म्य का वर्णन पद्म-पुराण के उत्तर खण्ड के 121 एवं 122 में विस्तार से किया गया है। 121वें अध्याय के अनुसार कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में एकादशी से अमावास्या तक दीप जलाने का विशेष उल्लेख किया गया है।

इन पाँच दिनों में भी अन्तिम दिन को वहाँ विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके माहात्म्य में इसे पितृकर्म मानते हुए कहा गया है कि स्वर्ग में पितर इस दीप-दान से प्रसन्न होते हैं—

पितरश्चैव वाञ्छन्ति सदा पितृगणैर्वृतः।
भविष्यति कुलेऽस्माकं पितृभक्तः सुपुत्रकः॥27॥
कार्तिके दीपदानेन यस्तोषयति केशवम्।
घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः॥28॥
ज्वलते यस्यसेनानीरश्वमेधेन तस्य किम्।
तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम्॥26॥

अर्थात् पितर भी अपने पितरों के साथ घिरे हुए यह इच्छा रखते हैं कि हमारे कुल में ऐसा कोई पितृभक्त होगा,जो कार्तिक मास में दीप जलाकर भगवान् विष्णु को सन्तुष्ट करेगा। जिसके द्वारा जलाया गया घी का अथवा तिल के तेल का दिया जलता है वह उसकी सेना की तरह होता है, उसे अश्वमेध के फल का क्या प्रयोजन? वह तो इसी से सभी प्रकार के यज्ञों को सम्पन्न कर इष्ट कर लेता है और सभी तीर्थों में स्नान कर लेता है।

यहाँ आगे कहा गया है कि एकादशी की रात किसी व्यक्ति ने भगवान् विष्णु के आगे दीप जला दिया था। रात में वह दीप जब बुझने लगा तो एक चूहा उसकी बाती रातभर उकसाता रहा। इस पुण्य से वह चूहा अगले जन्म में मनुष्य का शरीर धारण कर परम पद पा गया। एक व्याध भी चतुर्दशी की रात भगवान् शिव की पूजा कर परम-पद प्राप्त कर लिया। एक अन्य माहात्म्य के अनुसार एक वैश्य कुल की स्त्री थी, जो एक चाण्डाल के घर काम करती थी। उस चाण्डाल द्वारा जलाये दीप को वह रातभर उकसाती रही, जिसके कारण अगले जन्म में वह लीलावती बनकर स्वर्ग चली गयी। एक ग्वाला भी अमावस्या की रात में भगवान् विष्णु की पूजा का दर्शन कर बार-बार जय जयकार कर महाराज बना।

इन माहात्म्यों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इन दिनों सूर्यास्त होने पर रात्रि में घर, गोशाला, देवालय, श्मशान, तालाब, नदी आदि सभी स्थानों पर घी, तिल का तेल आदि से दीप जलाना चाहिए। इससे दीप जलाने वाले के ऐसे पितर, जिन्होंने पापाचरण किया था या जिनका श्राद्धकर्म उचित ढंग से नही हुआ वे भी इस दीपदान के पुण्य से मुक्त हो जाते हैं-

पापिनः पितरो ये च ये च लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।
तेऽपि यान्ति परां मुक्तिं दीपदानस्य पुण्यतः॥ 37॥

इसी स्थल पर अगले 122वें अध्याय में दीपावली के दिन का विस्तृत वर्णन किया गया है। कार्तिकेय के प्रश्न पर भगवान् शंकर कहते हैं कि कार्तिक मास की कृष्णपक्ष की त्रयोदशी तिथि को अपने घर के बाहर यमदीप जलाना चाहिए। इससे अपमृत्यु का निवारण होता है। यहाँ दीप जलाने का मन्त्र भी उल्लिखित है -

मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह।
त्रयोदशीदीपदानात् सूर्यजः प्रीयतामिति॥

इस दिन प्रातः काल में स्नान करने का विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इस स्नान के समय अपामार्ग, तुंबी, कट्फल, वाह्वल, इन चार वनस्पतियों को हाथ में सिर के ऊपर लेकर घुमाने का विधान किया गया है। इसके बाद तर्पण के क्रम में निम्नलिखित मन्त्रों से यमराज को जल देने का विधान किया गया है-

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥12॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥13॥

इसके बाद सन्ध्या के समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि के मन्दिरों में दीप जलाना चाहिए। इस दिन पितरों की प्रसन्नता के लिए पार्वण करने का भी विधान यहाँ किया गया है।

प्रेतचतुर्दशी

दीपावली से एक दिन पूर्व प्रेतचतुर्दशी भी मनायी जाती है। यह सम्पूर्ण उत्तर भारत में व्यापक रूप से मनाते हैं। वर्षक्रियाकौमुदी में इतिहाससमुच्चय से उद्धृत एक कथा भी दी गयी है। कथा में कहा गया है कि एक धार्मिक व्यक्ति था. जो किसी तीर्थ पर गया। उसे वहाँ पाँच प्रेत मिले। पाँचो प्रेत भयंकर कष्ट में थे। उन प्रेतों ने इस व्यक्ति को अपने भोजन तथा निवासस्थान के बारे में विवरण दिया। यह विरण धार्मिक शिक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूरण है। प्रेत कहते हैं कि जिस घर में साफ-सफाई का ध्यान न रहे, घर के सामान बिखरे पड़े हों, जूठे बरतन आदि रखे गये हों, घर के लोग गंदगी से भरे हों, बहुत शोक करते हों, ऐसे घरों में प्रेत अपना भोजन करते हैं। इसी प्रकार के अन्य विवरण भी दिये गये हैं। स्पष्ट है कि पुराणकार ने प्रेत के मुख से यह विवरण सुनाकर आम लोगों को इन बातों से दूर रहने का उपदेश किया है।

प्रेतयोनि है या नहीं, यह विवाद का विषय हो सकता सकता है, पर इस कथा की उपयोगिता पर कोई सन्देह नहीं है। यदि प्रेतचतुर्दशी पर यह कथा कहकर पुराणकार ने हमें एक शिक्षा दी है तो यह प्रेतचतुर्दशी का पर्व प्रत्येक वर्ष इस शिक्षा की हमें याद दिलाता है।

(वर्षक्रियाकौमुदी, गोविन्दानन्द, पं. कमलकृष्ण स्मृतितीर्थ, एसियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कालकाता, 1902, पृ. 461)

उल्काभ्रमण

दीपावली की सन्ध्या में उल्का-भ्रमण का विधान मिलता है। खढ़ यानी जिससे फूस का घर बनता है, उसमें पाँच बन्धन डालकर उल्का बनाया जाता है। इस उल्का के मुँह के पास दो मूठ समकोण बनाकर डाला जाता है। मिथिला में इसके अंदर कपास का डंठल भी डाला जाता है। उल्काभ्रमण के क्रम में यह कपास का डंठल आधा जल जाता है, जिसे घर में रखा जाता है। इसी अधजले डंठल से उस रात्रि के अन्त में स्त्रियाँ सूप/डागरा पीटकर दरिद्रा को भगाने का कार्य करतीं हैं तथा इसी डंठल से नवान्न के दिन अग्नि प्रज्वलित की जाती है। इस उल्का को घर की देहली पर जले दीपक से जलाकर अपने घर के चारों ओर आलय में घुमाते हैं।

इसके साथ ही, कुछ उल्काएँ अलग से भी बनायी जाती है, जिन्हें घर के छप्पर पर फेंक दिया जाता है। मान्यता है कि इससे घर में रहने वाले की रक्षा होती है।

यह प्रक्रिया भारत के लगभग हर क्षेत्र में है। पूर्वोत्तर भारत में इसके पीछे की अवधारणा है कि हमारे जो पितर यमलोक को छोड़कर पृथ्वी पर इस अंधकार में भटक रहे हैं वे इस उज्ज्वल ज्योति से यमलोक का रास्ता दख लेंगे। गदाधर के कालसार, गोविन्दानन्द कृत वर्षक्रिया कौमुदी अमृतनाथ कृत कृत्यसारसमुच्चय आदि बंगाल तथा मिथिला के ग्रन्थों में इस उल्काभ्रमण को पितृकर्म माना गया है। अनन्तदेव ने भी स्मृति कौस्तुभ में इसका विधान किया है, इससे पता चलता है कि मध्य भारत में भी इसका विधान रहा होगा।

गदाधर ने दीपावली के विवरण के क्रम में उल्लेख किया है कि पिता-पितामह-प्रपितामह, मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामह इन छह पितरों का आवाहन कर दीपावली की रात्रि उनके नाम से दीप अर्पित करें।

गदाधर ने इस क्रिया के बाद उल्काभ्रमण का विधान किया है। वे उल्का के ग्रहण, दान एवं विसर्जन का मन्त्र ब्रह्मपुराण से लिखते हैं।

तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः।
उल्काहस्ताः नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम्॥

(गदाधरपद्धति, प्रथमकाण्ड, कालसार, पं. सदाशिव मिश्र (सम्पादक), एसियाटिक सोसोयटी ऑफ बंगाल, कोलकाता, 1904, पृ. 468.

उल्काग्रहण मन्त्र इस प्रकार है-

अस्त्रशस्त्रहतानां च भूतानां भूतदर्शयोः।
उज्ज्वलज्योतिषा देहं प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते॥

अर्थात् भूत अमावस्या एवं दर्श अमावस्या में अस्त्र-शस्त्र आदि से मृत प्राणिगण इस उज्ज्वल ज्योति से अपने शरीर को देखते हुए जायें।

दानमन्त्र-

अग्निदग्धाश्च ये जीवाः येप्यदग्धाः कुले मम।
उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम्॥

हमारे कुल में पितरों में से जिनका अग्निसंस्कार हुआ है अथवा नहीं हुआ है अर्थात् वे जल आदि में डूबकर मरे हैं वे इस उज्ज्वल ज्योति से दग्ध होकर परम गति को पावें।

विसर्जन मन्त्र-

पितृलोकं परित्यज्य आगता ये ममालये।
उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते॥

अर्थात् पितरों के लोक को छोड़कर जो हमारे आलय में भटकते हुए आ गये हैं, वे इस उज्ज्वल ज्योति से मार्ग देखते हुए जायें।

उल्कादान के मन्त्र में किसी किसी पुस्तक में एक अन्य मन्त्र भी उपलब्ध होता है-

क्रत्वादिदेवताः सर्वाः पितरश्च महर्षयः।
सर्वे ते व्यपगच्छन्तु अनया ज्वालया सह॥

क्रतु आदि सभी देवगण, सभी पितर तथा सभी महर्षि इस ज्वाला के साथ अपने अपने स्थान को जायें।

(गदाधरपद्धति, उपर्युक्त, पृ. 472-73)

भ्रातृ-द्वतीया, यम द्वितीया, चित्रगुप्त-पूजा

भगवान् सूर्य के पुत्र यम एवं पुत्री यमुना से सम्बद्ध यह दिन माना गया है। लोकव्यवहार में इस दिन भाई अपनी बहन के घर जाकर भोजन करते हैं। कहा जाता है कि इस दिन जो बहन अपने भाई को भोजन कराती है उनका सौभाग्य अटल रहता है, साथ ही भाई की भी आयु बढ़ती है।

इस पर्व का के माहात्म्य का वर्णन पद्म पुराण के उत्तर-खण्ड के 122 वें अध्याय मे श्लोक सं. 92 से 103 तक विस्तार से किया गया है। इसके अनुसार प्राचीन काल में यमराज ने इस दिन अपनी बहन यमुना द्वारा पूजित होकर उनके के हाथों भोजन किया था।

कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां तु शौनक।
यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेर्चितः॥

अतः यमराज की कृपा से पापमुक्त होकर स्वर्ग जाने के लिए इस दिन यमुना के जल में स्नान का भी विशेष महत्त्व माना गया है। इस दिन बहन के घर भोजन करना चाहिए तथा उसे पारितोषिक देकर प्रसन्न करना चाहिए। बहन भी भाई की अभ्यर्थना करे।

इस प्रकरण में यमराज की एक स्तुति भी की गयी है -

महिषासनमारूढो दण्डमुद्गरभृत् प्रभुः।
वेष्टितः किंकरैर्हृष्टैः तस्मै याम्यात्मने नमः॥

अर्थात् भैंसे के आसन पर चढ़े हुए दण्ड एवं मुद्गर लिए हुए प्रभु यमराज प्रसन्नचित्त सेवकों से घिरे हुए हैं। ऐसे यम स्वरूप को प्रणाम।

प्रकरण के अन्त में कहा गया है-

यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः संभोजितः प्रतितिथौ स्वसृसौहृदेन।
तस्मात् स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति वित्तशुभसंपदमुत्तमांसः॥

जिस तिथि में बहन यमुना के द्वारा यमराज को भोजन कराया गया, उस तिथि में जो बहन के हाथ से दिया हुआ अन्न खाता है, वह धन, शुभ संपदा तथा उत्तम अंश पाता है।

इसी दिन यमराज के मन्त्री चित्रगुप्त की पूजा का भी विधान किया गया है। परम्परानुसार भगवान् चित्रगुप्त सभी व्यक्तियों के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा रखते हैं। उनका आसन यम के दरबार में लगा रहता है। यह अवधारणा कम से कम छठी शती से पहले ही स्थापित हो चुकी थी क्योंकि महाकवि दण्डी के दशकुमारचरित में इसका उल्लेख उपलब्ध होता है।

चित्रगुप्त महाराज लेखन-कला के देवता माने जाते हैं। प्राचीन काल में कायस्थ जाति इस कला के लिए प्रसिद्ध थे। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य की एक उक्ति है जिसमें कहा गया है कि ब्राह्मण यदि यत्नपूर्वक भी लिखे फिर भी अक्षर सुन्दर नहीं होते; अतः यह लेख शकटदास से लिखा लाओ। बाद में भी लिपिकार के रूप में कायस्थ समाज में पूर्ण प्रतिष्ठित रहे। वे चित्रगुप्त की पूजा इस दिन धूम-धाम से करते हैं।

मिथिला की परम्परा में वर्षकृत्यकारों ने चित्रगुप्त-पूजा की पद्धति के साथ एक कथा दी है, जिसे पद्मपुराण से उद्धृत माना गया है; किन्तु मुम्बई संस्करण के उपलब्ध पद्म-पुराण की प्रति में यह कथा उपलब्ध नहीं है। हलाँकि कई स्थानों पर चित्रगुप्त की महिमा तथा उनकी स्तुतियाँ उपलब्ध हैं। परम्परा से प्राप्त व्रत-कथा के अनुसार चित्रगुप्त का जन्म ब्रह्मा के शरीर से हुआ और ब्रह्मा ने उन्हें धर्म एवं अधर्म की विवेचना के लिए यमपुरी में वास करने का आदेश दिया। चित्रगुप्त के ध्यान में कहा गया है कि उनके हाथों में दवात, कलम और छुरी है। इस कथा में प्रणाम करने का मन्त्र इस प्रकार है -

मसीभाजनसंयुक्तश्चरोऽसि त्वं महीतले।
लेखनीकठिनीहस्त चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥
येषां त्वया लेखनस्य जीविका येन निर्मिता।
तेषां च पालको यस्मात् ततः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

रोशनाई का दबात के साथ आप इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं। कलम तथा खल्ली आपके हाथों में हैं, ऐसे चित्र गुप्त को प्रणाम। आपने लेखन कर्म को जिनकी जीविका बनाया है उनके आप पालक हैं अतः आप शान्ति प्रदान करें।

इस प्रकार, दीपावली से एक दिन पूर्व से लेकर यम द्वितीया तक पितृ-गण से सम्बन्ध सिद्ध होता है। हालाँकि इन दिनों में हनुमानजी का आविर्भाव, गोवर्द्धन-पूजा, पशुपूजा आदि के भी प्रसंग आते हैं। दीपावली के तो अनेक सन्दर्भ मिलते ही हैं।

***

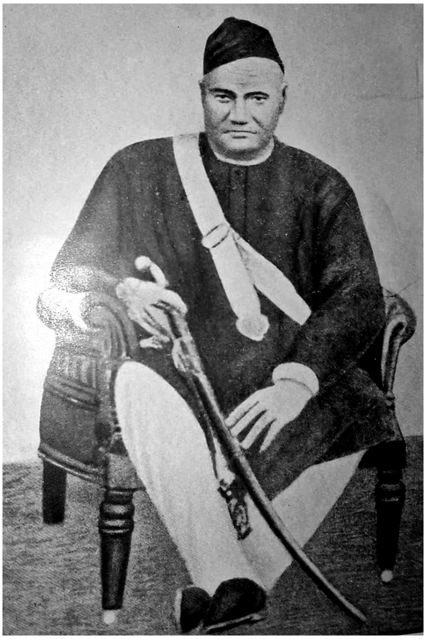

हनुमान्-जन्मोत्सव की चार स्तुतियाँ

राजर्षि कवि बाबू गोपीश्वर सिंह
(लेखन काल– 19वीं शती), दरभंगा

कार्तिक मास महावीर हनुमानजी के जन्म से सम्बन्धित मास है। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को हनुमानजी का अवतार हुआ था। भगवान् शंकर स्वयं श्रीराम की सहायता के लिए हनुमान के रूप में अवतरित हुए थे।

कुछ लोग हनुमान-जयन्ती चैत्र पूर्णिमा को मानते हैं। उनकी अपनी परम्परा है। स्वामी रामानन्दाचार्य ने अपने ग्रन्थ वैष्णवमताब्जभास्कर में भा कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी तिथि को माना है।

इस सम्बन्ध में हम मिथिला की परम्परा का यहाँ अवलोकन करें। वास्तव में मिथिला के प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में हनुमद्ध्वजदान का तो उल्लेख है, किन्तु जयन्ती के विषय में स्पष्ट निर्णय नहीं मिलता है। लेकिन यदि हम लोक-परम्परा की बात करें तो मिथिला के लोग भी कार्तिक मास में ही जयन्ती मनाते आ रहे हैं।

यहाँ हम 19वीं शती की लिखित परम्परा की बात करें। महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह तथा रमेश्वर सिंह के पिता महाराज महेश्वर सिंह थे। उनके भाई थे– गोपीश्वर सिंह। इनका दूसरा नाम सुन्दर बाबू था। जब महेश्वर सिंह का देहान्त हो गया और लक्ष्मीश्वर सिंह तथा रमेश्वर सिंह शिशु ही थे तो राज्य कोर्ट ऑफ वाड्र्स के अधीन लग गया। उन दिनों इन दोनों शिशुओं की माता के आग्रह पर एक मौलवी, एक पण्डित तथा एक अभिभावक को इन दोनों शिशुओं के साथ रखने की व्यवस्था हुई। अभिभावक के रूप में बाबू गोपीश्वर सिंह रहे।

बाबू गोपीश्वर सिंह की एक रचना गोपीश्वर विनोद का प्रकाशन राज दरभंगा के प्रेस से हुआ, जिसका तीसरा संस्करण 1948ई. में हुआ है। इस गीत संग्रह में चैत्र से आरम्भ कर वर्ष भर के विभिन्न व्रतों, पर्वों तथा उत्सवों पर गाये जाने वाले गीतों का संकलन है। ये सभी गीत बाबू गोपीश्वर सिंह की रचनाएँ हैं। चैत्र मास में रामनवमीसे सम्बन्धित गीत हैं, जिनमें छठिहारी, पालना, बालक्रीड़ा के भी गीत हैं। वैशाख में जानकी जन्मोत्सव के गीत हैं। इसी प्रकार, गंगा जन्मोत्सव, हरिशयन एकादशी, श्रीराम हिलोड़ा, श्रीकृष्ण हिलोड़ा, श्रीकृष्ण जन्मोत्सव आदि के गीत हैं।

ये स्वयं इन उत्सवों का आयोजन करते थे तथा गायकों के लिए गीत लिखकर देते थे। इन गीतों में इनकी भक्ति तथा सर्वसम्प्रदाय समन्वय स्पष्ट है।

कार्तिक मास के प्रसंग में इन्होंने श्रीश्यामापूजनोत्सव, श्रीहनुमज्जन्मोत्सव श्रीगोवर्द्धन पूजोत्सव तथा श्रीदेवोत्थान एकादशी के गीतों की रचना की है।

मिथिला की प्राचीन परम्परा रही है कि देवों का जन्मोत्सव जन्म के अगले दिन यहाँ मनाया जाता रहा है। जिस दिन देवता का अवतार होता है, उसके अगले दिन जन्मोत्सव मनाया जाता है। जन्म के दिन व्रत कर पूजा की जाती है तथा अगले दिन गीत, नृत्य, वाद्य आदि का आयोजन कर उत्सव मनाते हैं। फलतः इस पुस्तक में भी कार्तिक अमावस्या के दिन हनुमज्जन्मोत्सव कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि अमावस्या से एक दिन पूर्व अर्थात् चतुर्दशी में जन्म अभिप्रेत है।

इस संकलन में हनुमज्जन्मोत्सव से सम्बन्धित पाँच गीत दिये गये हैं। पाठकों के लिए ये चारों गीत यहाँ अविकल प्रस्तुत हैं-

अमावास्यायां श्रीहनुमज्जन्मोत्सवः

(रागिनी भैरवी)

कुमुद कृष्ण तिथि ललित अमावस मारुतनन्दन जनम लियो।
केसरि कुल सरसिज दिनमनि भो मातु अञ्जना मुदित कियो।
लै अवतार हन्यौ मद निशिचर, हर्षित करि मुनि मनुज हियो।
सेवक पद गोपोश जानि प्रभु अचल भक्ति पद कमल दियो ॥1॥

रागिनी कान्हरा

जयति जनकात्मजा शोक निर्मूल कर, अञ्जनानन्द जगवन्द्य बङ्का॥
मर्कटाधीश भुज बीश मद समन कृत, दहन प्रसाद चय सकल लङ्का॥
उदय मार्त्तण्ड सम रुचिर प्रति अङ्ग लस, दास रघुनाथ खल मान हारी॥
सचिव सुग्रीव प्रिय अतुल सौमित्र दुख, गहन दावाग्नि प्रभु ब्रह्मचारी॥
नौमि रुद्रांश नख दन्त आयुध विमल, राम हित अनुज घननाद हन्ता॥
ऋक्ष कपि बालिसुत शोक भय भङ्ग करि, पार दुःपार कूपार गन्ता॥
शब्द विद्या निपुन भव्य तन गुन सकल, धरहु मन ध्यान हृदय गामी॥
जानि निज दास प्रभु अचल निज पद युगल, देहु दृढ़ भक्ति गोपीश स्वामी॥2॥

राग वसन्त बहार

भजु पवन तनय श्रीहनूमन्त, प्रिय दास भक्त जानकी कन्त॥
लस अंग रुचिर सम सूर बाल, काटत निजसेवक मोह जाल।
बल अतुल नयन लस युगल लाल, भुज दण्ड परक सोहत विशाल॥
पाथोधि उलँधि रघुनाथ काज, किय दहन लङ्कगढ़ लङ्कराज!
मार्यो प्रकुपित निशिचर समाज, तिहुँ लोक सुजस जय बम्ब बाज॥
अञ्जनानन्द प्रभु गुनागार, नर हरत दुसह तन कलुष भार।
भव मोह सघन वन दृढ़ कुठार, आयुध नष रद भूधराकार॥
गुनगन नित सुरगन करत गान. गुन विदित जगत यहि कह प्रमान।
केशरी तनय करुनानिधान, 'गोपीश' सदा हिय लागु ध्यान॥3॥

रागिनी झझौटी

जय जय बल अतुल धाम, बात सुन बिदित नाम।
सेवकवर दूत राम, खल दल मदहारी॥
हाटक गिरि प्रतिम अंग, दशमुख गृह करन भंग।
अंश मौलि जाहि गङ्ग, ब्रह्मचर्य धारी॥
पिङ्गल युग छाज नयन, भक्तन सुख चारु दयन।
शारद यश कहत बयन, थाके अनुहारो॥
सचिव प्रिय प्लवगराज, ओजश तन दिव्य भ्राज।
फाँदि उदधि राम काज, कुंमर अक्षमारी॥
शब्दशास्त्र के निधान, मोचन दुख लखन वान।
हरन शोकनिधि समान, जनक के दुलारी॥
आयुध नख दन्त याहि. विदित यह त्रिलोक माँहि।
पटतर जग कोउ नाहि, जाके सुन भारी॥
भक्त सुदृढ़ सोय रवन, बरनन तिहि करै कवन।
अह निशि धरु ध्यान तवन, तन मन धन वारीं॥
माँगत वर करि हुलास, गोपिईश चरन दास।
भक्ति अचल हिय निवास, रघुवर सह प्यारी॥4॥

***

म.म. विद्यापति कृत वर्षकृत्यम् से संकलित

कार्तिक मास : भगवान् विष्णु का मास

पं. गोविन्द झा, (अनुवादक)

म.म. विद्यापति (14-15वीं शती) न केवल मैथिली के गीतकार हैं, बल्कि एक विख्यात लोकोन्मुखी धर्मशास्त्री तथा निबन्धकार भी हैं। संस्कृत में विभागसार, शैवसर्वस्वसार, दुर्गाभक्तितरङ्गिणी, व्याडीभक्तितरङ्गिणी, गयापत्तलकम्, वर्षकृत्यम्, भूपरिक्रमणम्, गंगावाक्यावली (विश्वास देवी के नाम से) दानवाक्यावली, लिखनावली आदि अनेक शास्त्रीय रचनाएँ हैं।

म.म. विद्यापति कृत वर्षकृत्यम् खण्डित रूप में ही उपलब्ध है, किन्तु कार्तिक मास के सभी प्रचलित पर्वो-व्रतों का उन्होंने विवेचन किया है। इसका अनुवाद पं. गोविन्द झा के द्वारा किया गया 2016 ई. में प्रकाशित है। यद्यपि इससे पूर्व भी म.म. चण्डेश्वर ने कृत्यरत्नाकर में इस प्रकार का वर्णन किया है, किन्तु वहाँ केवल पौराणिक श्लोक संकलित कर दिए गये हैं, जबकि विद्यापति ने लोकाचार का भी निर्देश किया है। उन्होंने देवात्थान एकादशी के दिन आँगन में जिस अल्पना का उल्लेख किया है वह आज भी प्रचलन में है। अतः लगभग 600 वर्ष पूर्व की मान्यता को हम यहाँ अविकल उद्धृत कर रहे हैं।

पूरे वर्ष में कार्तिक मास का विशेष महत्त्व है। इस पूरे मास में आज भी अनेक व्रत एवं पर्व होते हैं। यदि हम वैदिक काल के उद्धरणों पर विचार करें तो कृतिका नक्षत्र से सम्बद्ध यह मास कभी वर्षारम्भ माना जाता था। फिर ग्रहों और नक्षत्रों की गति में परिवर्तन के कारण अग्रहायण से वर्षारम्भ माना गया। संक्रान्ति की गणना से माघ की संक्रान्ति से भी किसी काल में वर्षारम्भ मानने की परम्परा थी। आज हम सभी फाल्गुन की पूर्णिमा के अगले दिन से वर्षारम्भ मान रहे हैं।

इस प्रकार, कृतिका नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा वाला कार्तिक मास अति प्राचीन काल से महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है।

यहाँ हम 14वीं शती में लिखी गयी सामग्री प्रस्तुत कर रहे हैं। यह म.म. विद्यापति कृत वर्षकृत्य से ली गयी है। इस वर्षकृत्य का उल्लेख बंगाल के रघुनन्दन भट्टाचार्य ने तीन बार किया है। इसकी एक पाण्डुलिपि आचार्य रमानाथ झा के पास थी, जिसके आधार पर पं. गोविन्द झा ने इसका सम्पादन किया था। उन्होंने ही इसका हिन्दी अनुवाद भी किया है। यह वर्षकृत्य डॉ. हीरानाथ झा के सम्पादन में कला प्रकाशन, बी. 33/33ए, न्यू साकेत कालोनी, बी.एच.यू. वाराणसी से सन् 2016 ई. में प्रकाशित है। इसके साथ विद्यापति की दो अन्य रचनाएँ 'व्याडीभक्तितरंगिणी' तथा 'गयापत्तलक' भी हैं।

ये तीनों रचनाएँ यद्यपि खण्डित उपलब्ध हुई हैं तथा जितना अंश इसमें है वह महत्त्वपूर्ण है।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि विद्यापति ने कार्तिक मास के जिन-जिन व्रतों-पर्वों का यहाँ उल्लेख किया है, वे उन दिनों प्रचलित थे। इसमें विद्यापति ने पूजा आदि की पूरी पद्धति नहीं लिखी है, किन्तु विशेष मन्त्रों तथा विधियों का उल्लेख कर दिया है, जिनका उपयोग कर कोई पण्डित व्यक्ति इस प्रकार के अनुष्ठान करा सकते हैं।

विशेष बात है कि यहाँ दी गयी विधियाँ मुगलकाल के तथाकथित परिवर्तनों से अप्रभावित है। यद्यपि विद्यापति की ख्याति वर्तमान में एक भाषाकवि के रूप में अधिक है किन्तु उनका एक धर्मशास्त्री का स्वरूप यहाँ देखने लायक है।

अथ कार्तिककृत्यम्

अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम्।
तिर्यग्योनिमवाप्नोति सर्वधर्मबहिष्कृतः॥
यतिश्च विधवा चैव विशेषेण वनाश्रमी।
कार्तिके नरकं याति अकृत्वा वैष्णवं व्रतम्॥
जन्मप्रभृति यत् पुण्यं विधिवत् समुपार्जितम्।
भस्मीभवति तत् सर्वमकृत्वा कार्तिके व्रतम्॥

कार्तिक मास के अनुष्ठान

जो कोई भगवान् कृष्ण का प्यारा कार्तिक मास व्रत के बिना बितावे वह सभी धर्मों से दूर होकर कीट-पतंगों की योनि में जन्म लेगा। विशेषकर संन्यासी, विधवा और वानप्रस्थ यदि कार्तिक मास में वैष्णव मार्गानुसारी व्रत-संयम नहीं करें तो वे नरक जाएँगे। जन्म से लेकर जो भी पुण्य विधिपूर्वक किया हो वह सारे का सारा भस्म हो जाएगा यदि आप कार्तिक मास के व्रतों का अनुष्ठान नहीं करें।

कार्तिके वर्ज्यानि—

निष्पारान् राजमाषांश्च सुप्ते देवे जनार्दने।
यो भक्षयति राजेन्द्र चाण्डालादधिको हि सः॥
निष्पारः श्वेतसिम्बिः।
कार्तिकेतु विशेषेण राजमाषांस्तु भक्षयेत्।
निष्पारान् मुनिशार्दूल यावदाकूतनारकी॥
कदम्बानि पटोलानि वृन्ताकसहितानि च।
न त्यजेत् कार्तिके मासि यावदाकूतनारकी॥
एतानि भक्षयेद्यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने।
शतजन्मार्जितं पुण्यं दहते नात्र संशयः॥

कदम्बफलम्, पटोलफलम्, भण्टाकीफलं च। केचित् 'कडम्बानि' इति पठित्वा कलम्बीशाकं पटोलादिशाकं च तदा निषिद्धमाहुः।

कार्तिक मास में वर्जित

कार्तिक मास में ये काम वर्जित हैं— "भगवान् विष्णु के सो जाने पर अर्थात् हरिशयन एकादशी के बाद जो निष्पारू और राजमाष (उर्द) खाता है वह हे राजेन्द्र, चाण्डाल से भी अधम है।" निष्पारू का अर्थ है सफेद सीम (?)।

विशेष रूप से कार्तिक मास में जो सफेद सीम और राजमाष (उर्द) खाता है, हे मुनिवर, वह मानो जानबूझकर नरकगामी है। कदम्ब, परवल और बैगन इनका वर्जन जो कार्तिक में न करे वह मानों जानबूझकर नरक जानेवाला है। हरिशयनी एकादशी के बाद जो ये वस्तुएँ खाएगा उसका सौ जन्मों में अर्जित पुण्य भस्म हो जाएगा, इसमें सन्देह नहीं। कदम्ब का फल, परवल का फल, बैंगन का फल। कोई 'कदम्बानि' की जगह 'कडम्बानि' ऐसा पाठ मानकर करमी साग और परवल साग को निषिद्ध कहते हैं।

आकाशदीपदानम्—

यस्तु केशवमुद्दिश्य दीपं दत्त्वा तु कार्तिके।
आकाशस्थं ज्वलन्तञ्च शृणु तस्यापि यत् फलम्॥
धनधान्यसमृद्धस्तु पुत्रवानीश्वरो भवेत्।
लोचने च शुभे तस्य विद्वानपि च जायते॥
कार्तिकसंक्रान्तिक्रमेण प्रथमदिने प्रातःकाले

कृतस्नानादिः आचान्तः— 'ॐ भगवन् सूर्य, भगवत्यो देवताः, अद्यादि कार्तिकमासं व्याप्य प्रतिनिशं विष्णु सम्प्रदानकाकाशस्थ-दीपदानव्रतम् अहमाचरिष्यामि' इति निवेद्य 'ओं धनधान्यादि समृद्धत्व-पुत्रवत्त्वैश्वर्य-शुभलोचनत्वविद्वत्त्वकामनया अद्यादिकार्तिकमासं व्याप्य प्रतिनिशम् आकाशस्थदीपं विष्णवेऽहं दास्ये' इति कुशतिलजलादिभिः संकल्प्य रात्र्युपक्रमे गन्धादिभिर्विष्णुं सम्पूज्य—

ॐ दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे॥

इति पठित्वा 'एष दीपः ओं विष्णवे नमः' इति दद्यात्। एवं सन्ध्याकाले प्रत्ययं पूजादीपदानं कर्तव्यम्। तथा—

उच्चैः प्रदीपमाकाशे यो दध्यात् कार्तिके नरः।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥

आकाश-दीप का दान

जो विष्णु भगवान् के निमित्त कार्तिक मास में आकाश-दीप जलाता है उसका फल सुनिये। वह धन और धान्य से भरा-पूरा रहता है, पुत्र और ऐश्वर्य पाता है, शुभदर्शी और विद्वान होता है।

कार्तिक मास में संक्रान्ति के हिसाब से पहला दिन प्रातःकाल स्नान और आचमन करके निवेदन करें— 'हे भगवान् सूर्य, हे भगवती देवियों, आज से आरम्भ करके कार्तिक मास भर प्रतिदिन मैं भगवान् विष्णु के निमित्त आकाश-दीप दान व्रत करूँगा।' तब 'धन-धान्य आदि की समृद्धि से, पुत्र-प्राप्ति हो, ऐश्वर्य, शुभ दर्शितत्व और विद्याप्राप्ति की कामना से आज से कार्तिक मास के अन्त तक प्रति रात विष्णु भगवान् को आकाश-दीप दूँगा, इस तरह कुश-तिल-जल आदि लेकर संकल्प करें। रात शुरू होने पर चन्दन आदि से विष्णु की पूजा करें। तब- 'भगवान् विष्णु को प्रणाम। हे भगवान्, मैं डंडे में लटकन के साथ आकाश-दीप आपको चढ़ाता हूं। अनन्त और वेधस् को मेरा प्रणाम।'

यह पढ़कर 'यह दीप मैं विष्णु भगवान् को समर्पित करता हूँ।' इस मन्त्र से दान करें। इस प्रकार शाम के समय रोज पूजा और दीप दान करें। तथा-

जो कोई कार्तिक मास में ऊँचा आकाश-दीप देगा वह अपने सारे कुल का उद्धार करके विष्णुलोक को प्राप्त करेगा।

कार्तिके प्रकरणात् प्रातःस्नानफलम् -

कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः।
जपन् हविष्यमुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

नित्यस्नायी प्रातःस्नायी, नित्यस्नानं प्रातः स्नानमिति वचनात्। जपादिकम् अत्र अङ्गम्। मासश्चायं सौरः। तत्र सौरकार्तिकोपक्रमे नद्याम् अरुणोदयवेलायाम् 'ओं सर्वपापक्षयकामोऽद्यादिकार्तिकमासं व्याप्य प्रतिदिनं प्रातः स्नानमहं करिष्ये' इति संकल्पः। जितेन्द्रियत्वं ब्रह्मचर्यम्। हविष्यभोजनं शान्तत्वं हिंसानिवृत्तत्वम् एतानि अङ्गानि।

प्रातःस्नान

कार्तिक मास में प्रसंगवश प्रातःस्नान का फल बताता हूँ-

जो पूरे कार्तिक मास में प्रतिदिन प्रातः स्नान करे, इन्द्रिय संयम करे, हविष्य मात्र खाए, जप करे और शान्त रहे वह सभी पापों से मुक्त होता है।

नित्यस्नायी (मूल वचन में) का अर्थ है प्रातः स्नायी क्योंकि कहा गया है, 'नित्यस्नान है प्रातः स्नान।' जप आदि इसमें अंग स्वरूप है। इसमें मास सौर (संक्रान्ति से आरम्भ होनेवाला) लिया जाता है। सौर कार्तिक के क्रम से नदी में अरुणोदय के समय स्नान करें तो यह संकल्प होगा- मैं सभी पापों के नाश की कामना से आज से कार्तिक मासो भर रोज प्रातःस्नान करूँगा। इन्द्रियसंयम है ब्रह्मचर्य। हविष्य भोजन, शान्ति और हिंसा से दूर रहना ये तीनों कर्म के अंग हैं।

अथ प्रेतचतुर्दशी।

तत्र भविष्ये—

कार्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यां दिनोदये।
अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः॥
ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः।
ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान्॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च।
कूपागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च॥

लिङ्गपुराणे—

ततः प्रेतचतुर्दश्यां भोजयित्वा तपोधनान्।
शैवानेवाथवा विप्रान् शिवलोके महीयते॥
दानं दत्त्वा तु तेभ्यस्तु यमलोके न गच्छति।
वस्त्रं दत्त्वा तथा तेभ्य इन्द्रलोके महीयते॥
पूजां कृत्वा यथाशक्ति शिववन्मोदते सुखी।
स्नानं कृत्वा यथाशक्ति सुखी स्यान्नात्र संशयः॥
दीपावलिं तथा दत्त्वा शिवालये नरो मुने।
एकविंशकुलैर्युक्तो वसेच्छिवपुरे नरः॥

प्रेतचतुर्दशी

अब प्रेतचतुर्दशी का कृत्य बताता हूँ। इस बारे में भविष्यपुराण में कहा गया है— जो नरक से डरते हों उन्हें कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के समय अवश्य ही स्नान करना चाहिए; और स्नान के बाद धर्मराज के नामों से तर्पण करना चाहिये। फिर शाम को यम के निमित्त दीप देना चाहिए। यह दीप ब्रह्मा, विष्णु और शिव के मन्दिरों में, मठों में, कूपागारों (स्नानगृहों?) में, चैत्यों में, सभा-भवनों में और नदी-पाटों में दिया जाए। लिंगपुराण में कहा गया है—

तब प्रेतचतुर्दशी के दिन तापसों, शैवों या विप्रों को भोजन कराकर वह शिवलोक पहुँचता है। उन्हें दान देकर वह यमलोक जाने से मुक्त हो जाता है। उन्हें वस्त्र देकर इन्द्रलोक पहुँचता है। उनकी यथाशक्ति पूजा करके वह शिव के समान सुखी हो जाता है। यथाशक्ति स्नान करके वह निःसन्देह सुखी होता है। शिवालय में दीपमालिका देकर हे मुनि, वह इक्कीस पुरुषों सहित शिवपुर कैलाश में वास करता है।

अथ सुखरात्रिकृत्यम्

तत्र ब्रह्मपुराणे —

अमावास्यायां तु देवाः कार्तिके मासि केशवात्।
अभयं प्राप्य सुप्तास्तु सुखं क्षीरोदसानुषु॥
लक्ष्मी दैत्यभयान्मुक्ता सुखं सुप्ताऽम्बुजोदरे।
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मा सुप्तस्तु पङ्कजे॥
अतोऽर्थं विधिवत् कार्या मनुष्यैः सुखसुप्तिका।
दिवा तत्र न भोक्तव्यम् ऋते बालातुराज्जनात्॥
प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाक्रमम्।
दीपवृक्षास्तथा कार्याः शक्त्या देवगृहेष्वपि॥
चतुष्पथे श्मशानेषु नदीपर्वतवेश्मसु।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु वनेषु पवनेषु च॥
वस्त्रैः पुष्पैर्भूषितव्याः क्रयविक्रयभूमयः।
दीपमालापरिक्षिप्ते प्रदोषे तदनन्तरम्॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वादौ विसृज्य च बुभुक्षितान्।
अलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना॥
स्निग्धैर्मुग्धैर्विदग्धैश्च बान्धवैर्भृतकैः सह।

तत्र दिने बालरोगिणश्च विहाय कैश्चिदपि न भोक्तव्यम्।

सुखरात्रि (दीपावली)

अब सुखरात्रि का कृत्य बताता हूँ। इस बारे में ब्रह्मपुराण में कहा गया है —

कार्तिक मास में अमावस्या को देवतालोग भगवान् विष्णु से अभय (सुरक्षा) पाकर क्षीरसागर के गिरिश्रृंगों पर आराम से सोये थे। लक्ष्मी दैत्यों के डर से छुटकारा पाकर कमल के गर्भ में आराम से सोयी। चार हजार युगों तक ब्रह्मा कमल पर सोये रहे। इसलिए इस दिन सबको सुखसुप्तिका (सुखरात्रि का अनुष्ठान) करनी चाहिए। इसमें बाल, वृद्ध और रोगी को छोड़ सबको दिन में उपवास करना चाहिये।

प्रदोषसमये लक्ष्मीपूजा।

आचम्य गृहाभ्यन्तरे उपविश्य ॐ लक्ष्मि इहागच्छ इह तिष्ठ' इत्यावाह्य स्नापयित्वा 'एतानि पाद्यादीनि ओं लक्ष्म्यै नमः। इदमनुलेपनम् ओं लक्ष्म्यै नमः।' ततः पुष्पेण—

ॐ यां जनाः प्रतिनन्दन्ति ऊर्ध्वं धेनुमिवायतीम्।
नारायणस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली॥

इति पठित्वा 'ओं लक्ष्म्यै नमः' इति त्रिःपूजयेत्। 'एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूल नैवेद्यानि ओं लक्ष्म्यै नमः।' 'ओं रूपं देहि ...' इत्यादिना वरं प्रार्थ्य 'ओं भगवति लक्ष्मि प्रसीद' इति क्षमापयेत्। 'ओं भगवन् कुबेर इहागच्छ इह तिष्ठ' इत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ओं कुबेराय नमः। इदमनुलेपनम् ओं कुबेराय नमः।' ततः पुष्पेण—

ॐ धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च।
भवन्तु त्वत्प्रसादान्मे धनधान्यादि सम्पदः॥

इति पठित्वा 'ओं कुबेराय नमः' इति त्रिः पूजयेत्। एवं धूपादिना पुनः पूजयित्वा वरं प्रार्थ्य 'ओं कुबेर क्षमस्व' इति विसर्जयेत्। दीपवृक्षाः प्रकर्तव्याः, देवगृह-चतुष्पथश्मशान-नदी-पर्वत-वृक्षमूल-गोष्ठ-चत्वर-गृहेषु प्रदीपा देयाः। दीपमालापरिवृतस्थाने ब्राह्मणान् भोजयित्वा अलंकृतैः स्निग्धबान्धवैः सह भोक्तव्यम्। रात्रौ शोभनायां शय्यायां भूषिताभिर्दयिताभिः सह शयितव्यम्। नववस्त्राणि निजमनुष्येभ्यो दातव्यानि स्वयं च परिधातव्यानि।

सन्ध्याकाल में लक्ष्मी की पूजा

तब प्रदोष (शाम) के समय यथाविधि लक्ष्मी की पूजा करें भर सक देवालयों में दीपमालिका जलाएँ। चौराहों पर श्मशानों में, नदियों, पर्वतों और घरों में, पेड़ों के तले, गोठों में, वनों में पर्वतों में भी दीपमालिका दें। खरीद-बिक्री के स्थानों (दूकानों) को वस्त्रों और फूलों से सजाएँ। तब दीपावली से जगमगाती सन्ध्या को पहले ब्राह्मणों को खिलाकर बाद में भूखों को खिलाकर विदा करें। तब नये वस्त्रालंकार धारण कर स्नेहपात्र, भोले भाले चतुर बन्धु बान्धवों और सेवकों के साथ स्वयं भोजन करें।

इसमें बच्चों, बूढ़ों और रोगियों को छोड़ और किसी को खाना नहीं चाहिये। प्रदोष काल में इस प्रकार लक्ष्मी की पूजा की जाए। आचमन करके घर के भीतर बैठकर 'हे लक्ष्मी, यहाँ आइये; यहाँ बिराजिये।' ऐसा कहकर आवाहन करें। तब स्नान कराकर 'एतानि पाद्यादीनि, इदमनुलेपनम् ओं लक्ष्म्यै नमः ' इस प्रकार पाद्य आदि और चन्दन चढ़ाएँ। तब फूल लेकर—

ऊपर कामधेनु की भाँति आती हुई जिनका लोग स्वागत करते हैं, वह नारायण की स्त्री लक्ष्मी हमलोगों के लिए कल्याण कारिणी होवें यह पढ़कर तीन बार 'ओं लक्ष्म्यै नमः' इस मन्त्र से पूजा करें— एतानि गन्धपुष्प इत्यादि। तब रूपं देहि ... इत्यादि पढकर वर-प्रार्थना करें, और हे भगवती लक्ष्मी प्रसन्न होइये' ऐसा कहकर क्षमापन करें (विसर्जन नहीं)। तब कुबेर की पूजा करें— भगवन् कुबेर, यहाँ आइये, यहाँ बिराजिये' कहकर आवाहन करें, तब कुबेराय नमः इस मन्त्र से पाद्य, चन्दन आदि चढ़ावें। तब फूल लेकर।

"हे धनदाता निधि, पद्म आदि के अधिपति कुबेर, आपकी कृपा से मुझे धन-धान्य आदि की समृद्धि हो।" यह कहकर 'ओं कुबेराय नमः' इस मन्त्र से तीन बार पूजा करें। इस प्रकार धूप आदि से फिर पूजा करें, वर-प्रार्थना करें और 'हे कुबेर, क्षमा करें' यह कहकर उनका विसर्जन करें। दीपवृक्ष बनाएँ। मन्दिर, चौराहे, श्मशान, नदी, पर्वत, वृक्षमूल, गोठ, दरबाजा, घर इन सबों में दिये जलाएँ। दीपमालिका से घिरे स्थान में ब्राह्मणों को भोजन कराएँ, और सजे सजाये प्यारे बन्धु बान्धवों के साथ भोजन करें। रात में सुन्दर शय्यापर सजी-सजायी स्त्रियों के साथ सोयें। अपने लोगों को नया वस्त्र दें, स्वयं भी नया वस्त्र पहनें।

अथ द्यूतप्रतिपत्-कृत्यम्।

ब्राह्मे

शङ्करस्य पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम्।
कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवत्॥
जितश्च शङ्करस्तत्र जयं लेभेऽथ पार्वती।
अतोऽर्थं शङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखोषिता॥
तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरः शुभः॥
पराजयो विरुद्धस्तु लब्धनाशकरो भवेत्।
श्रोतव्यं गीतवाद्यादि स्वनुलिप्तैः स्वलंकृतैः॥

द्यूत-प्रतिपदा

अब द्यूत-प्रतिपदा का कृत्य बताता हूँ। ब्रह्मपुराण में कहा गया है— "पूर्व काल में कार्तिक शुक्लपक्ष के पहले दिन भगवान् शंकर ने द्यूत नाम का एक सच्चा मनोरंजक खेल सृजित किया। उसमें शंकर हारे और पार्वती जीती। इससे शंकर दुखी हुए और गौरी सदा सुखी रहीं। इसलिए इस दिन प्रातः काल जुआ खेलें। इस जुए में जो जीतेगा उसका वह वर्ष शुभ होगा और जो हारेगा उसका अशुभ होगा; लब्ध धन का भी नाश होगा। इस दिन वस्त्र-भूषण-चन्दन आदि से सजकर गीत वाद्य आदि सुनना चाहिए।"

वीरप्रतिपदा

वामनपुराणे बलिं प्रति त्रिविक्रमवाक्यम्—

वीरप्रतिपदा नाम तव भावी महोत्सवः।
तत्र त्वां नरशार्दूल हृष्टाः पुष्टाः स्वलंकृताः॥
पुष्पदीपप्रदानेनार्चयिष्यन्ति ये मानवाः।
बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो॥
भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम्।
इति बलिपूजा मन्त्रः।

वीरप्रतिपदा

वामनपुराण में त्रिविक्रम (विष्णु) ने बलि से कहा है — "हे राजा बलि, वीर प्रतिपदा नाम से आपका महोत्सव मनाया जायेगा। उसमें, हे मानवश्रेष्ठ, लोग सज-धजकर हृष्ट-पुष्ट हो फूल और दीप चढ़ाकर आप की पूजा करेंगे।" बलि की पूजा का मन्त्र है—

हे विरोचन के पुत्र प्रभु बलिराज, हे भावी इन्द्र, हे दानवेन्द्र, यह पूजा ग्रहण की जाय।

तत्रैव शिष्टा गो-गोवर्द्धन-वृषपूजामाचरिन्त।

तत्र गोवर्द्धनपूजामन्त्रः—

गोवर्धन धराधार गोकुलत्राण कारण।
विष्णुबाहुधृतोच्छ्राय गवां शान्तिप्रदो भव॥

गोपूजामन्त्रः—

गावो ममाग्रतो नित्यं गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तुं गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

गोग्रासमन्त्रस्तु —

सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः॥

वृषपूजायां तु—

धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक।
अष्टमूर्त्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

गो-गोवर्द्धन एवं वृषपूजा

इसी प्रतिपदा को शिष्ट लोग गोपूजा, गोवर्धन पूजा और वृषपूजा करते हैं।

इसमें गोवर्धन-पूजा का मन्त्र है— "हे गोवर्धन, हे गोकुल के त्राता, हे पृथ्वी के आधार, हे विष्णु के बाहु से ऊपर उठे गिरिराज, आप गायों के लिए शान्ति दें।"

गोपूजा का मन्त्र है— "गायें मेरे आगे विराजमान रहें, गायें मेरे पीछे विराजमान रहें, गायें मेरे हृदय में विराजमान रहें और इस प्रकार मैं गायों के बीच में रहूँ।"

गोग्रास (गाय को भोजन) देने का मन्त्र है— "सुरभि की सन्तति, सबों के लिए हितकर, पवित्र, पुण्य की राशि और तीनों लोकों की माता गायें मेरा दिया हुआ ग्रास ग्रहण करें।"

वृषपूजा का मन्त्र है— "आप वृषरूपधारी धर्म हैं।

आप संसार को आनन्दित रखने वाले हैं। आप अष्टमूर्ति शिव के वाहन हैं। आप मुझे शान्ति दीजिये।"

भ्रातृद्वितीया। ज्यौतिषे—

कार्तिके तु द्वितीयायां कर्तव्यं भ्रातृभोजनम्।
या न कुर्याद् विनश्यन्ति तस्यास्ते सप्तजन्मसु॥
ते = भ्रातरः।
भ्रातृभिश्च भगिन्योऽथ भूषणीयाः प्रयत्नतः।

भ्रातृद्वितीया

अब भ्रातृद्वितीया का कृत्य बताता हूँ। ज्यौतिष शास्त्र में कहा है— "कार्तिक (शुक्ल पक्ष) की द्वितीया तिथि में बहनें अपने-अपने भाइयों को भोजन करावें। जो ऐसा न करेगी उसके भाई सात जन्मों तक दुर्लभ रहेंगे।" यहाँ मूल में 'ते' का अर्थ है 'भ्रातरः'। और, भाइयों को चाहिए कि इस दिन बहन को वस्त्राभूषण से अलंकृत करें।

अथाक्षयनवमी।

भविष्ये—

मासैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं विधिना पूज्य चण्डिकाम्।
तत्फलं लभते वीरनवम्यां कार्तिकस्य तु॥

अक्षयनवमी

अब अक्षयनवमी का कृत्य बताता हूँ। भविष्य पुराण में कहा गया है— जो पुण्य चण्डिका को चार मासों तक पूजते रहने से मिलता है वह पुण्य कार्तिक मास की वीरनवमी में एक ही दिन पूजने से मिलेगा।

उत्थानैकादश्यां (शीं)

ब्रह्मपुराणे—

एकादश्यां तु शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम्।
सुप्तं प्रबोधयेद् रात्रौ श्रद्धाभक्ति समन्वितः॥

तत्र प्रकारः— तत्र प्राङ्गणे अष्टदलपद्मशङ्खादि लिखेत्। भगवन्तं विष्णुं तत्र सम्पूज्य इमं मन्त्रं पठेत्—

ॐ ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्य मानो
भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः ।
प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या
जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ॥
मेघा गता निर्मल पूर्ण चन्द्र-
शारद्यपुष्पाणि मनोहराणि।
अहं ददानीति च पुण्यहेतो-
र्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम्॥

पूजायां च धूपदीपनैवेद्यादि बहुविधभक्ष्याणि नानाविधफलानि दाडिमादीनि। कृष्णतुलसीमञ्जरीभिः जाती पुष्पादिभिः पूजा, नृत्य-गीत-बहुविधवाद्य-वासुदेवकथासूक्त-स्तोत्रैश्च प्रबोधः।

देवोत्थान एकादशी

अब देवोत्त्थान एकादशी का कृत्य बताता हूँ।

ब्रह्मपुराण में कहा गया है— "कार्तिक मास के शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि को रात में सोये हुए विष्णु भगवान् को श्रद्धा-भक्ति के साथ जगाएँ।"

इसकी विधि इस प्रकार हैं। आँगन में अष्टदल कमल, शंख आदि की अल्पना लिखें। उसपर भगवान् विष्णु की पूजा कर यह मन्त्र पढ़ें— "आपकी स्तुति ब्रह्मा, इन्द्र और रुद्र करते रहते हैं; आप वन्दियों द्वारा वन्दनीय ऋषि हैं। यह आपकी कौमुदी नाम की पूर्णिमा आ गई है। हे लोक नाथ, जागिये — जागिये। बादल चले गए। आकाश में निर्मल पूर्णचन्द्र विराजमान है। शरद् ऋतु के मनोहर फूल मैं पुण्य के लिए चढ़ाऊँ, इसलिए हे लोकनाथ, जागिये— जागिये। हे गोविन्द उठिये— उठिये; हे जगत् के स्वामी, निद्रा त्यागिये। आपके जागने से तीनों भुवन जग उठेगा।"

पूजा में धूप-दीप नैवेद्य आदि, नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ, नाना प्रकार के फल अनार आदि चढ़ावें। श्याम तुलसी की मंजरी से और चमेली आदि फूल से

पूजा करें। नाच, गान, विविध बाजे, कृष्ण की कथा, कविता, स्तोत्र आदि के स्वरों से जगावें।

अथ बकपञ्चकम्

एकादशी प्रभृति दिनपञ्चकमपि मांसत्यागः करणीयः। ब्रह्मपुराणे तस्मिन् पञ्चकमधिकृत्य—

देया च सर्वभूतेभ्यो नरैरभयदक्षिणा।

अहिंसारूपैव अभयदक्षिणा। बकैरपि अत्र मांसत्यागात् बकपञ्चकमिति प्रसिद्धम्, अत्र सर्वथा मांसत्यागः करणीयः। अस्मिन् सकलेऽपि पक्षे मांसत्यागः शस्तः।

महाभारते—

कौमुदे तु विशेषेण शुक्लपक्षे नराधिप।
वर्जयेत् सर्वमांसानि धर्मो ह्यत्र विधीयते॥

सकलकार्तिके मांसभक्षणे चाण्डालयोनिजन्म फलम्।

मांसाशी कार्तिके मासि चाण्डालश्चाभिजायते।

इति ब्रह्मपुराणवचनात्।

बकपंचक

अब बकपंचक का कृत्य बताता हूँ। एकादशी से लेकर पाँचो दिन मांस और मछली नहीं खाएँ। ब्रह्मपुराण में पंचक के प्रसंग में कहा गया है— "सभी प्राणियों को अभय दक्षिणा दें। हिंसा न करना ही अभय दक्षिणा देना है।"

इन पाँचों दिन बक भी मांस नहीं खाते, इसलिए इसका नाम 'बकपंचक' पड़ा है। इसमें सर्वथा मांस-भक्षण का त्याग करें। इस पूरे पखवारे में मांस न खाएँ तो और अच्छा। महाभारत में कहा है— "हे राजा, कार्तिक मास में विशेष कर शुक्ल पक्ष में सभी मांसों का त्याग करें; इससे पुण्य होता है।" सारे कार्तिक में किसी भी दिन मांस खाने से चाण्डाल कुल में जन्म पाता है जैसे कि ब्रह्म-पुराण में कहा गया है—

कार्तिक में मांस खानेवाला व्यक्ति चाण्डाल होकर जन्म लेता है।

कार्तिकीकृत्यम्

भविष्यपुराणे—

कार्तिके पौर्णमास्यां तु सोपवासोऽर्चयेदुमाम्।
अग्निष्टोमफलं विन्देत् सूर्यलोकं स गच्छति॥

अत्रोपवासः चतुर्दश्याम्।

कार्तिक-पूर्णिमा

अब कार्तिक पूर्णिमा का कृत्य बताता हूँ। भविष्य पुराण में कहा गया है— "कार्तिक की पूर्णिमा में उपवास करते हुए उमा की पूजा करें। इससे अग्निष्टोम यज्ञ के बराबर फल होता है और सूर्यलोक की प्राप्ति होती है।"

इसमें उपवास चतुर्दशी तिथि में किया जाय।

***

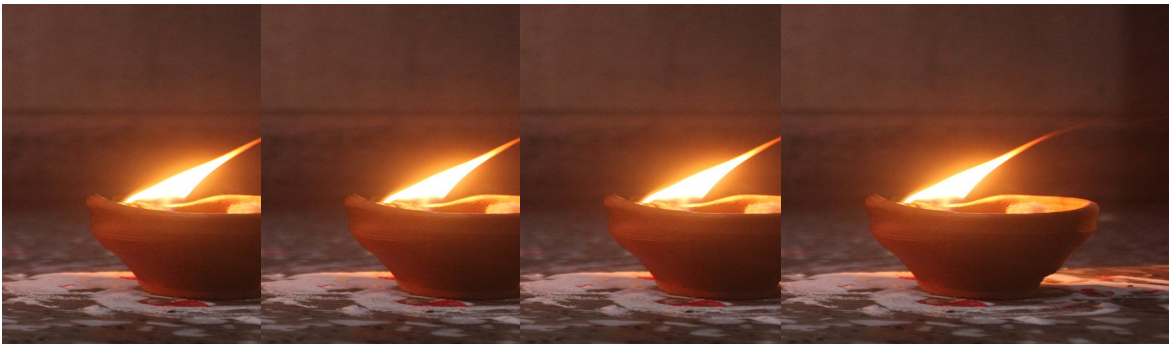

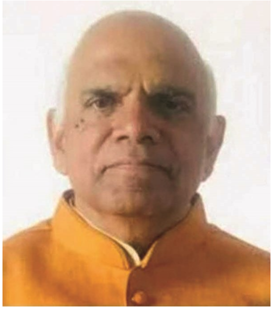

पितृयज्ञ का वैदिक विवेचन

डॉ. राधानंद सिंह

गयाधाम से सम्बन्धित विषयों का आपने विशेष अध्ययन किया है। इन विषयों पर आपकी दो पुस्तकें प्रकाशित हैं- 1. विष्णुपदी पितृतीर्थ गया : परम्परा, प्रवृत्ति और संस्कृति। 2. पितृतीर्थ गया का पौराणिक और धर्मशास्त्रीय सन्दर्भ।

वर्तमान में- फ्लैट संख्या- 601, लिगैसी स्क्वायर, पुलिस लाइन रोड, वाकड, पुणे-411057 (महाराष्ट्र) इमेल- radhanandbgp@gmail.com

अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि वर्तमान श्राद्ध-पद्धति में पुरोहितों के द्वारा बहुत सारे कर्म मध्यकाल में जोड़ दिये गये हैं। आर्य-समाजियों ने तो श्राद्धभोज की कारुणिक कहानियाँ गढ़कर लोगों को पूरे कर्म से विमुख करने का भरपूर प्रयास किया है। सम्पूर्ण श्राद्ध की पद्धति को अवैदिक करार कर मनमाना प्रचार किया जा रहा है। लेखक की मान्यता है कि वर्तमान काल में पितृनिमित्तक दान एवं ब्राह्मण भोजन भी मध्यकालीन प्रक्षेप नहीं, बल्कि वैदिक काल से रहे हैं। इस आलेख में लेखक ने विशेष रूप से अथर्ववेद से मन्त्रों को उद्धृत कर इनकी पारम्परिक व्याख्या कर श्राद्ध-पद्धतियों में वर्णित मूल तथ्यों को पूर्णतः वैदिक सिद्ध किया है।

वेद भारतीय आर्ष परम्परा का सार्वभौम सनातन स्रोत है।हमारी संस्कृति की गौरवगाथा वेदों से ही आरंभ होती है। हमारी संस्कृति के जिन उदात्त सिद्धांतों से विश्व-मानव प्रभावित और चमत्कृत होता रहा, उनके मूल स्रोत वेद ही हैं। वैदिक विद्वानों ने सच ही कहा है— "वेदों के ज्ञाता सब कुछ जानते हैं, क्योंकि वेद में सब कुछ प्रतिष्ठित है।जो ज्ञातव्य अर्थ अन्यत्र है या नहीं हैं, उस साध्य-साधनादि समस्त वर्णनीय अर्थों की निष्ठा वेदों में है। सृष्टि के आदि में स्वयंभू परमेश्वर द्वारा वेद का प्रादुर्भाव हुआ है। अतः वेदवाणी दिव्य है, नित्य है एवं आदि-अन्त रहित है।" महाभारत के अनुसार—

सर्वे विदुर्वेदविदो वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
वेदे हि निष्ठा सर्वस्य यद् यदस्ति च नास्ति च॥[1]

वेद और मरणोत्तर प्रस्थान

वेद को देव, पितर एवं मनुष्यों का सनातन चक्षु कहा गया है —

देवपितृमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनः।

इस वैदिक साहित्य के मूलतः चार भाग हैं —

1. संहिता (वेद का मंत्र भाग) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद— ये चार वेद हैं।
2. ब्राह्मण (यज्ञानुष्ठान का निरुपण)
3. आरण्यक (आध्यात्मिक बोध और वैराग्य प्रधान)
4. उपनिषद् (ब्रह्म तथा आत्मतत्त्व चिन्तन प्रधान)

1 महाभारत : शान्ति पर्व-270.43

अतः संहिता, ब्राह्मण,आरण्यक और उपनिषद् के वचन वेद वचन कहलाते हैं।

ऐसी शास्त्रोक्ति है की इस लोक से प्राणी का जब मरणोत्तर प्रस्थान होता है, तो वे चंद्रलोक को प्राप्त होते हैं। पुनः भुक्तशेष कर्म के फलभोगनिमित्त (पुनरेति) वापस पृथ्वी पर आता है। इसी को शास्त्र में प्रत्यावृत्ति या आगति कहा है—

उत्क्रान्ति गत्यागतीनाम्।[2]

जीवात्मा की उत्क्रांति, गति तथा अगति का श्रुतियों में वर्णन है। जीवों के आने-जाने मार्ग का वर्णन वेदों में है—

द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥[3]

पितरों, देवों और मनुष्यों के दो मार्ग (देवयान और पितृयाण) से हम परिचित हैं।यह संसार अग्रसर होते हुए (देवलोक और पितृलोक को जाते हुए) उन दोनों (देवयान और पितृयाण) मार्गों को प्राप्त करता है। देवयान मार्ग शुक्ल और प्रकाशमय है तथा पितृयाण कृष्ण और अन्धकारमय है। शुक्ल यानी देवयान को अनावृत्ति (मुक्ति) मार्ग और कृष्ण यानी पितृयाण को आवृत्ति (संसार में बार-बार लौटने वाला) मार्ग कहा गया है।

जीवात्मा की उत्क्रान्ति, गति तथा अगति का श्रुतियों में वर्णन है। कठोपनिषद् में वर्णन आता है—

योनिमध्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।[4]

अर्थात् मरने के बाद जीवात्माएँ अपने-अपने कर्मानुसार कुछ तो वृक्षादि अचल शरीर को तथा कुछ देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जंगम शरीर धारण करते हैं। प्रश्नोपनिषद् (5/4) में कहा गया है—

स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते।

अर्थात् स्वर्ग में नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को भोग करके जीव पुनः मृत्युलोक में लौट आता है।

वेदों में पितृयज्ञ का विधान

वेद में परलोक एवं पुनर्जन्म के तथ्यगत वर्णन तो हैं ही, वहाँ पितृयज्ञ यानी श्राद्ध कर्म का भी स्पष्ट उल्लेख है। कात्यायन स्मृति, 13/4 के अनुसार

'श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्'।

अर्थात् पितृयज्ञ का अपर नाम ही श्राद्ध है।

अथर्ववेद में स्पष्टोक्ति है —

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥[5]

अर्थात् हे अग्निदेव! आप उन सभी पितरजनों के हवि सेवनार्थ आएँ, जो भूमि में गाड़ने, खुली हवा या एकांत स्थल में छोड़ देने अथवा अग्नि दहन द्वारा अंत्येष्टि संस्कार के विधान से संस्कारित हुए हों तथा तथा जो संस्कार क्रिया के पश्चात् ऊपरी पितृलोक में विराजमान हों।

अथर्ववेद के अनुसार—

एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना।
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥7॥[6]

अर्थात् तर्पण में प्रदत्त हमारी ये सब जल धाराएँ तुम्हें प्राप्त हों और तुम्हारा पोषण करे। यहाँ तर्पण की जलधारा का स्पष्ट उल्लेख है।

इसी प्रकार ब्राह्मण भोजन के बारे में अथर्ववेद के अनुसार —

इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुधा मे अस्तु॥8॥[7]

2 वेदान्तसूत्र : 2.3.19.
3. ऋग्वेद : 10.88.15; यजुर्वेद : 19.47
4. कठोपनिषद् : 2.2.7.
5. अथर्ववेद : 18.2.34
6 अथर्ववेद : 4.34.7
7 अथर्ववेद : 4.34.8

अर्थात् ये ओदनोपलक्षित-भोज्य पदार्थ मैं ब्राह्मणों में स्थापित करता हूँ (उन्हें खिलाता हूँ) जो विस्तार को प्राप्त होकर लोक लोकान्तरों को जीतता हुआ स्वर्ग तक पहुँचता है।

वेद में इस सम्बन्ध में बड़ी तर्कसंगत बात है—

मुखादग्निरजायत॥[8]

अर्थात् विराट् के मुख से अग्नि उत्पन्न हुई।

यजुर्वेद के अनुसार— **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्।**[9]

अर्थात् ब्राह्मण विराट् का मुखस्थानीय है।इस प्रकार वेद की असंख्य ऋचाएँ जिस अग्नि के द्वारा हव्य-कव्यादि पितर के पास पहुँचने की बात कहती है, उससे श्राद्धादि कार्य में ब्राह्मण भोजन की परम सार्थकता सिद्ध होती है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार

अन्नं वा अयं प्रजापतिस्त्वन्मुखा एतदन्नमदाम त्वन्मुखानां न एषोऽन्नमसदिति तथेति तस्माद्देवा अग्निमुखा अन्नमदन्ति यस्यै हि कस्यै च देवतायै जुह्वत्यग्नावेव जुह्वत्यग्निमुखा हि तद्देवा अन्नमकुर्वत।[10]

अर्थात् अग्नि के माध्यम द्वारा स्वर्गस्थ देवता सदा हव्यों को खाते हैं पितृगण कव्यों को खाते हैं तो उस ब्राह्मण से अधिक उत्तम और कौन हो सकता है। अतः ब्राह्मण भोजन निर्विवाद वैदिक सत्य है।

एक प्रश्न यह है कि जब जीव मृत्यु के पश्चात् अन्य योनियों में जन्म ग्रहण कर लेता है, तो उसे श्राद्ध फल कैसे प्राप्त होगा? इसका उत्तर वेद में स्पष्ट है— एतत् ते तत् स्वाधा।[11] अर्थात् हे पिता! आपके लिए यह पिंडादिरूप में स्वाधाकार आहुति समर्पित हो।

अथर्ववेद, 18/4/78-80 में क्रमशः कहा गया है—

1. **स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः।** (78)
2. **स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः।** (79)
3. **स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः।** (80)

अर्थात् तीनों का सम्मिलित अर्थ क्रमशः यह है— पृथ्वीवासी, अन्तरिक्षवासी, द्युलोकवासी पितरगण के निमित्त यह आहुति स्वधारूप में समर्पित हो। अतः वैदिक निर्णयानुसार जो जहाँ जिस योनि में होता है, उसे वहाँ ही श्राद्ध फल प्राप्त होता है।

पितृयज्ञ से पितर की परितृप्ति

वेदों में पितृयज्ञ के संपूर्ण कर्मकांड के सांकेतिक प्रमाण हैं।बाद के शास्त्रों में उसी का उपबृंहण (विस्तार) हुआ है।कालक्रम से उस पर आक्षेप-विक्षेप होने लगे और हम भ्रांत होने लगे।लेकिन वेदों में सबका स्पष्ट उल्लेख है।

अमावस्या को श्राद्ध-तर्पण का महत्त्व क्यों है?

अहमेवास्म्यमावास्या3 मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे।

मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे॥[12]

अर्थात् सूर्य-चंद्र दोनों अमा= साथ-साथ बसते हों, वह तिथि अमावस्या मैं हूँ। मुझमें सब साध्यगण= पितृविशेष और इन्द्र प्रभृति देवता इकट्ठे होते हैं—

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः।

अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः॥[13]

अर्थात् हे सोमपानकर्ता पितृगण!आप अपने पितृलोक के गंभीर असाध्य पितृयाण मार्गों से अपने लोक को जाएँ।मास की पूर्णता पर अमावस्या के दिन

8 यजुर्वेद : 31.12
9 यजुर्वेद : 31.11
10 शतपथब्राह्मण 7.1.2.4
11 अथर्ववेद : 18.4.77
12 अथर्ववेद : 7.79.2
13 अथर्ववेद : 18.4.63

हविष्य का सेवन करने के लिए हमारे घरों में आप पुनः आएँ। हे पितृगण! आप ही हमें उत्तम प्रजा और श्रेष्ठ सन्तति प्रदान करने में सक्षम हैं। अतः पितृकार्य के लिए अमावस्या के महत्त्व का स्पष्ट वर्णन वेदों में है।

अश्विन माह में पितृपक्ष के बारे में वेद का कथन है —

सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ठ्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्॥[14]

शरद् ऋतु में छठी संक्रांति= कन्यार्क यानी जब सूर्य कन्या राशि में अवस्थित हों ऐसे काल में जो अभीप्सित वस्तुएँ पितरों को प्रदान की जाती हैं, वे सब स्वर्ग को देने वाली होती हैं।

पितृयज्ञ यानी श्राद्ध कर्म में तिल, जौ आदि के उपयोग की महत्ता पर वेद का कथन है—

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम्॥26॥[15]

अर्थात् तिल मिश्रित जिन स्वधान्ययुक्त जौ की खीलों को हम समर्पित करते हैं। वे खीलें तुम्हारे परलोक प्रस्थान पर विस्तृत सत्परिणाम देने वाली हों।

सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे।[16]

ये चावल सोम के अंशस्वरूप हैं।

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः।
व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ॥[17]

अर्थात् पीपल, कुशा, औषधियों का राजा सोम, अमृत हवियाँ,धान और जौ आदि ये सब अमर औषधियाँ हैं। ये सब द्युलोक प्रसूत हैं।

हम तीन पीढ़ी तक ही श्राद्ध क्यों करते हैं?

वेद कहता है—

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वऽन्तरिक्षम्।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम॥[18]

अर्थात् पितृ, पितामह और प्रपितामहों को हम श्राद्ध से तृप्त करते हैं और नमन करते हुए उनकी पूजा अर्चना करते हैं।

वेद पितृयज्ञ का एकमात्र प्रधान निरूपक

वेद में श्राद्ध करते समय पिंडवेदी के चारों ओर जलती कुशा को आलातचक्र की भाँति घुमाने का भी विधान वर्णित है। इसका कारण यह है कि बहुत-सी आसुरी आत्माएँ क्रोधादि दुर्गुण उत्पन्न करके श्राद्ध को बाधित कर स्वयं फल लूटने की ताक में रहती हैं। इसी के निवारण के लिए वेद ने उल्का-भ्रमण का आदेश दिया है।

अपहताऽ असुरा रक्षांसि वेदिषदः।[19]

अर्थात् यज्ञभूमि में विद्यमान आसुरी शक्तियाँ नष्ट हो गई हैं।

पितृणामसुररक्षसानि न विमथ्नते
तस्मात्परस्तादुल्मुकं विदधाति॥[20]

अर्थात् पितृकृत्य को असुर और राक्षस उपद्रुत नहीं कर पाएँ, एतदर्थ चारों ओर उल्मुक (जलता मराड़) घुमाया जाता है। इसी प्रकार यमलोक में गोदान एक मात्र सहायक है—

14 अथर्ववेद : 12.3.41
15 अथर्ववेद : 18.4.26
16 अथर्ववेद : 11.1.18
17 अथर्ववेद : 8.7.20
18 अथर्ववेद : 18.2.49
19 यजुर्वेद : 2.29
20 शतपथ ब्राह्मण : 2.4.2.14

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे।[21]

अर्थात् वशा (गाय) दान करने वाले दाता की संपूर्ण कामनाएँ यम (अनुशासन) के राज्य में पूर्ण होती है।

सनातन परम्परा में श्राद्ध में सर्वोत्तम पशु गाय, सर्वाधम पशु कुत्ते और सर्वाधम पक्षी काक को खीर खिलाने की वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के दर्शन होते हैं—

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ
चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं
स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि॥[22]

अर्थात् हे मृत्युदेव यम! आपके गृहरक्षक, मार्गरक्षक तथा ऋषियों द्वारा ख्यातिप्राप्त चार नेत्रों वाले जो दो श्वान हैं, उनसे मृतात्मा को संरक्षित करें तथा इस मृतात्मा को कल्याण का भागी बनाकर पापकर्मों से मुक्त करें।

गोभ्यो नमः श्वभ्यो नमः काकेभ्यो नमः।

अर्थात् गाय, कुत्ते और काकों के लिए यह बलि है। इस पितृयज्ञ (श्राद्ध) में पिंडदान, तर्पण और हवन कराने वाले वेदवेत्ता आचार्यों को दक्षिणा नहीं देने से सारे कृत निष्फल हो जाते हैं।

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा
दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते
दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः॥[23]

अर्थात् दक्षिणा प्रदान करने वालों को ही विलक्षण उपलब्धियाँ प्राप्त होतीं हैं। दिव्य लोक में भी सूर्यदेव उनके लिए ही स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। दक्षिणादाता ही अमर पद प्राप्त करते हैं तथा प्रसन्नता में दानी के प्रति शुभकामनाओं से दक्षिणादाता की आयु में वृद्धि होती है।

मालपूवा आदि भोगों के ग्रहण करने के संबन्ध में वेद कहता है —

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन्।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥[24]

अर्थात् हे पितृदेव! (यान्) जो (अपूपापिहितान्) मालपूवों से ढके (कुम्भान्) घट (ते) आपके लिए (देवाः) अग्नि, विश्वदेव आदि श्राद्ध देवताओं ने (अधारयन्) धारण किए हैं, (ते ते) वे वे सब (मधुमन्तः) मधु से युक्त और (घृतश्च्युतः) जिनसे घी चू रहा हो ऐसे पदार्थ आपके लिए (स्वधावन्तः) तृप्ति करने वाला (सन्तु) हो।

इस प्रकार संपूर्ण श्राद्ध कर्मों का वेदों में निरूपण हुआ है।

वेदों में अग्निदेव से पितरगणों की आत्मा को देवत्व प्रदान करने की प्रार्थना भी है—

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां
यथावशं तन्वं कल्पयस्व॥[25]

हे अग्निदेव! जिन पितरों का अग्नि संस्कार किया गया अथवा जिनका संस्कार संपन्न नहीं किया गया है, जो पितरगण स्वधायुक्त अन्न से तृप्ति प्राप्त करके स्वर्गलोक में हर्षित हैं, आप उनके साथ सुगंधित द्रव्यों का सेवन करें तथा पितरों की आत्मा को देवत्व प्रदान करें।

विस्तरभयात् इस विषय से सम्बद्ध कतिपय प्रसंग यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं। ऐसे वेदों में सम्पूर्ण पितृयज्ञ के सम्पूर्ण विधान की महत्ता और दिव्यता का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। बाद में पुराण, स्मृति आदि असंख्य शास्त्रों में इसके वर्णन मिलते हैं, जो वेद पर आधृत हैं।

***

21 अथर्ववेद : 12.4.36
22 अथर्ववेद : 18.2.12
23 ऋग्वेद : 1.125.6
24 अथर्व : 18.4.25
25 ऋग्वेद : 10.15.14

पितरों का तीर्थ : गया

श्री रवि संगम

बिहार पर्यटन-सूचना सामग्रियों के लेखक, भूतपूर्व पत्रकार, पटना। लेखक इन सभी स्थलों पर स्वयं घूमकर बौद्ध-सर्किट के पर्यटन स्थलों पर पुस्तक लिख चुके हैं।

दक्षिण बिहार में फल्गु नदी के तट पर अवस्थित गया नगरी पितृ-कर्म हेतु अति प्राचीन काल से प्रख्यात है। महाभारत तथा वाल्मीकि-रामायण में भी इसका उल्लेख आया है। वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड के 107वें सर्ग में राम ने भरत से कहा कि हम चारों भाइयों में से कम से कम एक को तो गया अवश्य जाना चाहिए; इसीलिए तो पितर विद्वान् तथा गुणवान् बहुत सारे पुत्रों की कामना करते हैं ताकि उनमें से एक भी गया चला जाये तो उन्हें तृप्ति मिल जाती है। यह कथन एक ओर पितृ-कर्म के लिए गया की महत्ता सिद्ध करता है तो दूसरी ओर मृत्यु के उपरान्त पुत्र के द्वारा पितरों की तृप्ति हेतु पिण्डदान आदि कर्मों की अति प्राचीनता सिद्ध करता है। आज जो लोग मृत्यु के उपरान्त श्राद्ध आदि कर्म को व्यर्थ मानते हैं उन्हें इस अंश को भलीभाँति देखना चाहिए।

बिहार के पर्यटन-स्थलों पर लगभग 30 वर्षों से कार्य करने वाले रवि संगमजी ने गया के लोगों की अवधारणाओं को यहाँ रेखांकित किया है। इस आलेख को वर्तमान पर्यटन-आलेख की दृष्टि से देखना चाहिए।

पटना से 112 कि॰मी॰ दक्षिण-पश्चिम में पर्यटन व तीर्थाटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विरासत से संपन्न प्राचीन पौराणिक नगर गया— हिन्दुओं और बौद्धों का अति प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। सात पर्वतों वाले इस शहर का वैदिक नाम 'ब्रह्मगया' है. यह स्थल— 'पवित्र मोक्ष स्थल' और 'देवताओं का विश्राम स्थल' माना जाता है। गया शहर को विष्णुनगरी भी कहा जाता है। आगमों के अनुसार गया भैरवीचक्र पर स्थित नगर माना जाता है।

गया फल्गु नदी के किनारे बसा यह एक प्राचीन नगर है। रामशिला एवं ब्रह्मयोनि पहाड़ियों से घिरा यह शहर 'मन्दिर की शिल्पकला' के लिए भी दर्शनीय है।

भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार, सत्ययुग में गया तीर्थ को उत्तम जानकर ब्रह्माजी ने यहाँ सर्वप्रथम पिण्डदान किया था. उसी समय से पिण्डदान की प्रथा जारी है. उसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए त्रेता युग में स्वयं भगवान श्रीराम, द्वापर युग में पितामह भीष्म, धर्मराज युधिष्ठिर, भगवान कृष्ण सहित कई महापुरुषों ने पिण्डदान किया।

गया के पितृपक्ष में कुल 45 वेदियों पर पिण्डदान होता है. सभी वेदी पर पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, मतामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही के नाम से 12 पिण्ड होते हैं. इसके बाद पिताकुल, माताकुल, श्वसुरकुल, गुरुकुल और नौकर को भी पिण्ड दिया जाता है.

प्राचीन समय में यहाँ एक वर्ष में श्राद्ध होता था.

बोधगया में बोधिवृक्ष के नीचे पिण्डदान करते हुए, 1810ई. की पेंटिंग

साभार : ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन

पिण्डदान करने के वेदों की संख्या प्राचीन काल में 360 थी, प्रतिदिन एक-एक वेदी पर पिण्डदान करने का प्रावधान था। अब अनेक वेदियां लुप्त हो गयीं है. यहाँ प्रतिवर्ष पितरों के लिए तर्पण एवं पिण्डदान के उद्देश्य से आश्विन मास की 1-15 तिथि तक, पितृपक्ष में लाखों तीर्थयात्री आते हैं।

वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में श्रीराम ने स्वयं अपने मुख से गया जाकर राजा दशरथ को पिण्डदान देने का आदेश भरत को दिया है। यहाँ पर वे भरत को अयोध्या लौटने के लिए मानसिक रूप से तैयार करते हैं और कहते हैं कि भरत! मैं तो वनवास में हूँ अत: गया जाकर पिता को पिण्ड नहीं दे सकूँगा, लेकिन यदि तुम अयोध्या लौट जाते हो तो गया जाकर यह कार्य कर लेना। इसीलिए लोग बहुत पुत्रों की कामना करते हैं कि इनमें से कोई एक भी यदि गया चला जाए तो पितर को संतुष्टि मिल जाती है।

एष्टव्या बहवः पुत्रा गुणवन्तो बहुश्रुताः।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चिद्गयां व्रजेत्॥

–वाल्मीकि रामायण, 2.107.13

'वायु-पुराण' के गया-माहात्म्य के अनुसार प्राचीन गया नगर 'गयासुर' नामक राक्षस के नाम पर बसा- जो भगवान विष्णु का अनन्य भक्त था. हिन्दुओं में अटूट आस्था है कि यहाँ पिण्डदान करने से आत्मा का स्वर्गारोहण होता है. इस विश्वास की एक पौराणिक कथा है कि असुरों में गयासुर नाम से प्रसिद्ध एक बलशाली और पराक्रमी राक्षस हुआ, जो केवल तपस्या में प्रीति रखता था। उसका तप सम्पूर्ण भूतों को पीडित करनेवाला था। उसके तप से यमराज की चिंता बढ गयी और देवतागण संतृप्त हो गये। गयासुर ने दीर्घकाल तक कोलाहल पर्वत पर तपस्या की। उसके इस तप से भगवान नारायण ने उसके शरीर को समस्त तीर्थों से अधिक पवित्र होने का वर दे दिया।

परिणामस्वरूप मनुष्य, गयासुर का स्पर्शमात्र कर, ब्रह्मलोक का अधिकारी होने लगा। मृत्युलोक के प्राणियों से ब्रह्मलोक की भूमि भरने लगी और अन्य लोक खाली होने लगे, इससे भयभीत हो देवतागण ब्रह्माजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी, भगवान शंकर के साथ देवताओं भगवान विष्णु की शरण में गये और वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण जानकारी देते हुए अपना वर वापस लेने का आग्रह किया। भगवान

रामशिला पर्वत के पीछे का भाग

विष्णु ने देवताओं से यज्ञ के लिए गयासुर के पवित्र शरीर को दान में माँग लेने की सलाह दी।

तदनुसार देवताओं ने उसके शरीर को अचल बनाने का निर्णय लिया और इस कार्य के लिए गयासुर से उसकी देह को यज्ञस्थल बनाने की माँग की. गयासुर इस कार्य के लिए सहर्ष तैयार हो गया। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने उसके शरीर पर यज्ञ आरंभ किया. यज्ञ पूरा होने के पश्चात् गयासुर फिर उठने लगा। ब्रह्माजी ने यम को कहलाया, यम ने ब्रह्मा के आदेश पर धर्मशिला लाकर गयासुर के मस्तक पर रखा. इसके बावजूद भी उसका हिलना बंद नहीं हुआ।

तब देवतागण बेचैन हो गये। पुनः भगवान विष्णु के पास पहुँचे और उन्हें सारी बात बतायी। तब भगवान विष्णु गदाधर रूप ले प्रकट हो, गयासुर के तप से प्रभावित होकर, वर माँगने को कहा. तब गयासुर ने कहा कि जब तक पृथ्वी का अस्तित्व रहे, चाँद और तारे रहे, ब्रह्मा-विष्णु-महेश इस शिला पर विराजमान रहेगें. भगवान विष्णु ने एवमस्तु कहते हुए गयासुर के उपर रखे धर्मवती शिला को इतना कस के दबाया कि उनका चरण-चिन्ह स्थापित हो गया. 'भगवान् विष्णु के चरण का छाप' आज भी विष्णुपद मन्दिर में विद्यमान है. तभी से गया एक पवित्र स्थान माना जाने लगा है.

फल्गू नदी के तट पर बसे, गया नगर का इतिहास 'बौद्ध काल से लेकर रामायण काल' तक जाता है। आनन्द-रामायण के अनुसार जब राम और सीता 'फल्गु नदी' के किनारे पिण्डदान के लिये गये थे। पिण्डदान की परम्परा आज भी फल्गू नदी के तट पर जारी है।

आनन्द रामायण के यात्राकाण्ड के छठे अध्याय की कथा के अनुसार फल्गु नदी में स्नान कर सीता देवी की पूजा के लिए बालू का पिण्ड बनाने लगी। सीता ने बायें हाथ में पिण्ड को रखा तथा दाहिने हाथ से उसे जल से सिंचित करने लगी। ज्यो ही उसने इस प्रकार जल से पिण्ड को सिंचित किया कि राजा दशरथ को वह प्राप्त हो गया। दशरथ ने हाथ बढा कर उसे ग्रहण कर लिया। सीता जो जो पिण्ड बनाती जाती थी, दशरथ अपने हाथ से उसे ग्रहण करते जाते थे। सीताजी भी आश्चर्यचकित होकर पिण्ड पर पिण्ड बनाती गयीं और दशरथ उसे स्वीकार करते गये। इस प्रकार सीता ने कुल 108 पिण्डों का निर्माण किया, जिन्हें दशरथ ने पितर के रूप में स्वीकार कर लिया।

बाद में जब राम अपने पिता को पिण्ड देने लगे तो पहले से ही सन्तुष्ट दशरथ पिण्ड स्वीकार करने हेतु उपस्थित नहीं हुए। इस पर आश्चर्यचकित होकर राम ने

लक्ष्मण से पूछा, फिर सीता से पूछा। अन्त में सीता ने सारी बात बतायी। राम को विश्वास ही नहीं हो रहा था। सीता ने फल्गु, गाय, पीपल का वृक्ष, गया के ब्राह्मण आदि को साक्षी माना पर इन्होंने झूठी गवाही दी तो सीता ने उन्हें शाप दे दिया। अन्त में सीता ने सूर्य को साक्षी माना। सूर्य भी इक्ष्वाकु कुल के पितर थे, वे भला कैसे नकारते। उन्होंने आकर राम को समझाया कि हमर पितर लोग पहले से ही सीता के द्वारा दिये गये पिण्डदान से सन्तुष्ट हैं। दशरथ भी उपस्थित हुए और उन्होंने सबको आशीर्वाद दिया।

आनन्द रामायण की यह कथा वस्तुतः गया का माहात्म्य है कि विना किसी साधन का, विना मन्त्र का विना किसी विधि-विधान का भी यदि केवल बायें हाथ में पिण्ड रखकर ऊपर से जल सिञ्चित किया जाये तो वह पितर को प्राप्त हो जाता है।

यह स्थान वर्तमान में रामशिला के नाम से विख्यात है।

प्राचीन काल से गया मगध साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। पूर्व में मगध का नाम कीकट था और इसे अनार्यों का निवास स्थान समझा जाता था. महाभारत के अनुसार, मगध के प्राचीन राजवंश का संस्थापक 'बृहप्रिय' था, जो उपरिचर का पुत्र और जरासंध का पिता था। मगध के नये राजवंश का सर्वप्रथम शासक बिंबिसार हुआ, जिसने अंग को जीतकर दक्षिण बिहार का एकीकरण किया और उसने कोसल तथा वैशाली से वैवाहिक संबन्ध स्थापित किये थे. इसके शासनकाल में मगध एक समृद्ध राज्य बना।

प्रेतशिला पर्वत

गयाधाम अद्भुत स्थान पर स्थित है। यहाँ से पूर्व दिशा में वैद्यनाथधाम और पश्चिम दिशा में स्थित काशी का विश्वनाथ धाम लगभग समान दूरी पर स्थित हैं।

वायु पुराण के अनुसार, फल्गु नदी के तट पर गया नगर में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ तीर्थ न हो. उसके अनुसार किसी की संतान गयातीर्थ के लिए जाये तो उसके लिए ब्रह्मज्ञान, गोशाला में मृत्यु तथा कुरुक्षेत्र तीर्थ का वास व्यर्थ है. इस पुराण के अनुसार, गया जिन देवताओं के नाम से ख्यात है, वे सब गयासुर के शरीर को स्थिर रखने के लिए साक्षात् देवस्वरूप उनके शरीर पर बैठे हुए हैं।

वाल्मीकि रामायण, महाभारत व विष्णुपुराण के अनुसार सूर्य के पौत्र 'गय' के नाम से गया बसाया था. महाभारत में भी युधिष्ठिर की तीर्थयात्रा के क्रम में उल्लेख है कि इस नगरी के संस्थापक राजर्षि गय थे, जिन्होंने यहाँ विशाल यज्ञ किया था।

वामन पुराण में उल्लेख किया गया है कि गया नगरी को स्थापित करनेवाले मनु के पौत्र 'अतुर्वरग गय' चंद्रवंशी थे और उन्होंने ही गया नगरी को बसाया था. राजा गय ने यहाँ एक ऐसे यज्ञ का आयोजन किया था, जिसमें अन्न के ढेर कई पर्वतों ,जैसे लग रहे थे. ऐसा कोई भी जीव न बचा हो जो इस यज्ञ से तृप्त न हुआ हो.

धर्मशास्त्र के निबन्धकारों मे विभिन्न पुराणों से संकलित कर गया को उत्तर भारत के तीन महत्तवपूर्ण तीर्थ के रूप में वर्णित किया है। काशी के विख्यात विद्वान् नारायण भट्ट ने त्रिस्थलीसेतु में गयामाहात्म्य भी लिखा है। मिथिला के वाचस्पति मिश्र ने गयाश्राद्धपद्धति का निर्माण किया है, जिसमें गया के विभिन्न स्थानों पर पिण्डदान का विधान है। इनमें से बहुत सारे स्थल आज लुप्त हो चुके हैं।

मिथिला के विद्यापति की भी एक अधूरी रचना गयापत्तलक मिलती है। इसमें उन्होंने उत्तरमानस, प्रेतशिला, दक्षिणमानस, फल्गुतीर्थ, विष्णुपद, रुद्रपद, कश्यपपद में पिण्डदान तथा आम के वृक्ष में पानी देने का विधान किया है।

प्रायः प्रत्येक तीर्थ में श्राद्ध करने का महत्त्व है, परन्तु गया में श्राद्ध का अपना अपने आप में विशेष महत्त्व है। पुराण साहित्य के अनुसार जो मनुष्य गया पहुँच कर श्राद्ध करता है, उसके पितृगण को तृप्ति प्रदान करनेवाला जन्म सफल हो जाता है. यहाँ के श्राद्ध में पितरों के पूजन से साक्षात् भगवान विष्णु पूजित होते हैं. गया की कण-कण भूमि श्राद्ध के लिए उपयुक्त है. गया में पिण्डदान का धार्मिक महत्त्व बहुत ज्यादा है।

***

लेखकों से निवेदन

अग्रिम अंक अग्रहायण मास का होगा। इस अंक के लिए विवाह-विशेषांक प्रस्तावित है। विवाह एक संस्कार है, जो आज हिन्दी पट्टी में फिल्मी प्रभाव के कारण एक समारोह मात्र बनकर रह गया है। वर्तमान युवा पीढ़ी तो केवल विवाह का विरोध जताने के लिए लिव-इन-रिलेशनशिप पर उतरआये हैं, जो मात्र एक विरोधवादी स्वर है। हमारे सनातन धर्म में यद्यपि आठ प्रकार के विवाह गिने गये हैं, किन्तु उनमें से केवल चार विधियों को स्वच्छ माना गया है। शेष चार अधम कहे गये हैं। इस पर हमारे शास्त्रकारों के वचनों को आज के सन्दर्भ में व्याख्यायित करनी चाहिए। वर एवं कन्या के चयन के सम्बन्ध में भी याज्ञवल्क्य कहते हैं- **मातृतः पंचमीं त्यक्त्वा पितृतः सप्तमी भजेत्।** दूसरी ओर दक्षिण भारत की परम्परा में मातुली कन्या पवित्र मानी जाती है। साथ ही, विवाह की विधियों के स्तर पर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग अलग मान्यताएँ हैं, लोकाचार हैं। आर्य समाज ने केवल सगोत्र वर्जित किया है। जनजातीय विवाह में भी सगोत्र की वर्जना मिलती है। इन सब विषयों पर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समाज के लिए पथ-प्रदर्शक होगा। हमारी सनातन परम्परा की मान्यताओं तथा वर्जनाओं से आज की युवा पीढ़ी को परिचित कराना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

***

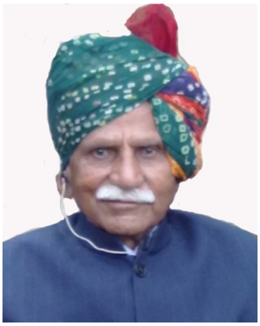

विचित्र लिपियों में लिखी पोथियाँ और पत्र

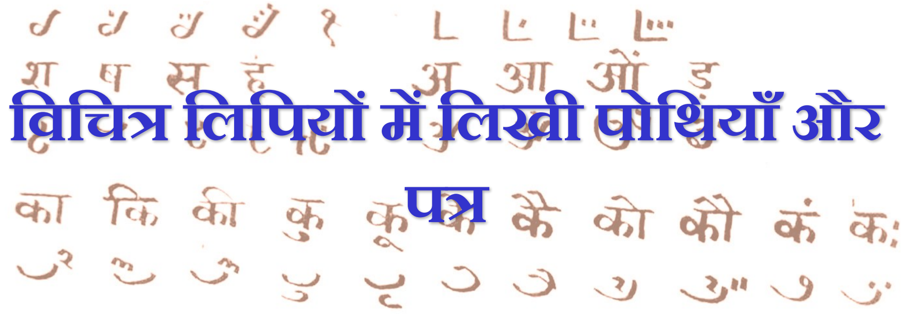

(डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' के सौजन्य से प्राप्त)

डॉ. व्रजमोहन जावलिया

डॉ. जावलिया राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के संस्कृत और राजस्थानी पांडुलिपियों के विद्वान् हैं। वर्तमान में वे 95 वर्ष की अवस्था के हो चले हैं। इनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ हैं- 'राजस्थानी औद्योगिक शब्दावली', 'सइकी,' 'खुमाण रासो', 'राणा रासो' और 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, के संस्कृत और राजस्थानी पांडुलिपियों के सूचीपत्र।' इनके अतिरिक्त लगभग 50 वर्षों से इनके शोध पत्र विभिन्न संकलनों में प्रकाशित होते रहे हैं।

प्राचीन साहित्य से आज अनेक ऐसे स्तोत्र, यन्त्र आदि की व्याख्या के क्रम में स्पष्ट होता है कि इन्हें कूट भाषा एवं लिपि में लिखा गया है। उदाहरण के लिए तुलसीदास रचित रामशलाकाप्रश्न को लिया जा सकता है। इसमें कोष्ठकों में वर्ण लिखे गये हैं, किन्तु किसी भी वर्ण से आरम्भ कर नवें कोष्ठ के वर्ण को संकलित करते हुए चौपाई बन जाती है। यह कूटलिपि है। इस प्रकार के अन्य ग्रन्थ भी मिलते हैं। अनेक चित्रकाव्य हैं, जिनके वर्णों को एक व्यवस्थित क्रम से लिखने पर विशेष आकृति बन जाती है। इस प्रकार के साहित्य को समझने के लिए कूटलिपि को सैद्धान्तिक रूप से समझना आवश्यक है। डॉ. जावलिया का यह आलेख 'Pathways to literature, art, and archaeology : Pt. Gopal Narayan Bahura felicitation volume', Chandramani Singh, Neelima Vashishtha. (Ed.), vol. 1, 1991ई. में "विचित्र लिपियों में लिखी पोथियाँ और पत्र" शीर्षक से प्रकाशित है। यह महत्त्वपूर्ण आलेख लेखक के परिजनों की अनुमति से पुनःप्रस्तुत है।

विश्व में हजारों भाषाएँ व्यवहार में आती रही हैं, और उनकी ध्वनियों को व्यक्त करने के लिये लिपियाँ भी अनेक प्रकार की प्रचलित रही हैं। अकेले हमारे देश में ही विविध लिपियों के प्रचलित होने के उल्लेख मिलते हैं। 'जैन समवायांग सूत्र', 'पन्नवरणा सूत्र', 'विशेषावश्यक सूत्र', और 'वर्णक-समुच्चय' में भारत में प्रचलित अठारह प्रकार की लिपियों की जानकारी मिलती है। बौद्धों के 'ललित विस्तर' ग्रन्थ में 64 प्रकार की लिपियों का उल्लेख किया गया है, जो ईसा से पूर्व प्रचलित थीं। इनके अतिरिक्त विदेशी लिपियों के साथ-साथ प्रान्तीय, जनजातीय, धार्मिक, चित्रात्मक, स्मृति-पोषक, आशुलिपि, श्रुतिलिपि, अंक-पल्लवी, शून्य-पल्लवी, रेखा-पल्लवी, जैसी सांकेतिक लिपियों और आधिभौतिक या कल्पित लिपियों के अस्तित्व का पता चलता है। शिलाखंड, धातुपत्र, तालपत्र, भूर्जपत्र, वस्त्रपट आदि पर उत्कीर्ण या लिखित नाना प्रकार की लिपियों के अभिलेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। भारत में प्रचलित प्राचीन लिपियों में मोहन जोदड़ो हड़प्पा की लिपि के पश्चात् ब्राह्मी[1] तथा खरोष्ठी लिपियाँ उल्लेखनीय हैं। अशोक के काल में ब्राह्मी सार्वदेशिक राजकीय लिपि थी, जो उत्तरी पश्चिमी कई लिपियों का

1. वासुदेव शरण अग्रवाल, "देवनागरी एक सर्वांगपूर्ण एवं शुद्ध लिपि, पाञ्चजन्य, 26 जुलाई 1965.

उद्गम मानी जाती है। ब्राह्मी के समकालीन ही एक अन्य लिपि ईसा पूर्व 2-3 शताब्दी में उत्तर-पश्चिमी भारत, पंजाब और अफगानिस्तान में प्रचलित थी, जो फारसी की तरह दाएँ हाथ की ओर से बायीं ओर लिखी जाती थी। यह खरोष्ठी (अक्षराष्टिका) कहलाती थी। सम्राट अशोक[2] ने पश्चिमोत्तर भारत के अपने लेख इसी खरोष्ठी लिपि में खुदवाये थे।

अरबों के भारत प्रवेश के उपरान्त सातवीं आठवीं शताब्दी ईस्वी में अरबी लिपि का प्रवेश इस देश में हुआ। कालांतर में फारसी के माध्यम से आई अरबी लिपि का भी मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के साथ यहाँ प्रचार हुआ उसमें आवश्यक परिवर्तन कर उर्दू आदि के लेखन के अनुरूप बनाने के प्रयास हुए। ये नस्ख या नस्तालीक प्रकारों से लिखी जाने लगी।[3]

महाराजा सवाई मानसिंह (द्वितीय) संग्रहालय, जयपुर के हस्तलिखित ग्रन्थागार (पोथीखाना) में सुबुद्धि की पोथी[4], ज्योतिष ग्रन्थ,[5] स्फुट पत्र और एक खरूज[6] पत्र उपलब्ध हैं, जिनकी विशेषता उनकी लिपियों की विचित्रता में निहित है। ये लिपियाँ प्रायः गूढ़ ही बनी हुई हैं। ये सामी परिवार की लिपियों की भाँति दायें से बाएँ और भारतीय लिपियों की भाँति बाएँ से दायें, दोनों ही रूपों में लिखी गयी हैं।

सुबुद्धि की पोथी में संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी, ब्रज और फारसी के लेख इस लिपि में लिखे गये हैं। इस पोथी में निहित मूल सामग्री मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, रसायन शास्त्र (कीमियागिरी) आदि से सम्बन्धित है। इसमें इन्द्रजाल, रुद्रजाल, महेन्द्रजाल, जैसी यातु-विद्या, विविध रोगों की चिकित्सा-विषयक औषधि प्रयोग, मांस गलाने, कौड़ी गलाने, दाद-खाज, गजचर्म, केशहररण आदि के प्रयोग में आने वाले तथा बाबरा, लोहद्राव, फासफोरूर, सफूफ, सियाफ, देवलतु, हींगलू आदि अनेक प्रकार के तेजाब बनाने की विधियाँ, उनके गुण-धर्म, तथा प्रयोग, पारद का अग्निस्तंभन करने, गोली या प्याला बनाने, भस्में तैयार करने की विधियाँ लोहशास्त्र (लोहे में आंक मांड़ने), गुदाद (गुदाज = पिघलाने) अंबर पाडने (लहरें डालने) की विधियाँ, लोहे को सफेद वर्ण में परिवर्तित करने, और काटने की औषधियाँ, तांबा गलाने, बुझाने, सफेद करने, तांबे की भस्म बनाने और उसका औषधियों में प्रयोग तथा प्रभ्रक, जस्ता (यशद), सीसा, आदि के प्रयोग, सोना बनाने, सोने का जोड़ा, रूपा, संदरस, रोगन, संपुट बनाने, अबरी बनाने, मूंगा बनाने तथा मूंगा, जवाहिरात यादि का रंग काढ़ने, स्याही और विविध प्रकार के रंग के निर्माण की विधियाँ, विष-चिकित्सा, हल्दी, कहरवा, जायफल, अजवायन, तुरगतीन, दालचीनी, पोदीना, जावित्री, आदि औषधियों से विभिन्न प्रकार के इत्रों का

2. खरोष्ठी शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों ने अनेक कल्पनाओं को जन्म दिया है। कोई इसे "खर ओष्ठ" से व्युत्पन्न मानते हैं तो कोई 'खर उष्ट्र' से। कतिपय विद्वान "खरपोस्त" शब्द को खरोष्ठी का मूल मानते हैं। वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि ब्राह्मी की भांति यह लिपि भी क, च, ट, त, प, य, श और स्वर (अ, आ आदि) आठ वर्गों में विभाजित है। अतः अन्य वर्ग-विहीन सैमेटिक लिपियों की समता में उसे "अक्षराष्टिका" कहा गया है। (मातृका त्वष्टधा ज्ञेया वर्गाष्टक विभेदतः)।

3. नस्ख और नस्तालीक लेखन में प्रयुक्त दो शैलियां हैं। इनका प्रारंभ चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ। इस शैली का प्रयोग मुख्यतः कविताएँ लिखने में होता था। सुलेखन और सुलेखकों के जीवन चरितों में प्रायः परम्परागत छः लिपियों का उल्लेख मिलता है। द्रष्टव्य, श्री गोपाल नारायण जी बहुरा का अप्रकाशित लेख "सुलेखन कला"।

4. पोथी खाना, सवाई मानसिंह, द्वितीय संग्रहालय, जयपुर (ग्रंथांक 74 एम. जे. एम.)

5. ग्रंथांक 75 ए. जी, पोथीखाना, सवाई मानसिंह द्वितीय संग्रहालय, जयपुर।

6. ग्रंथांक 916, पूर्ववत्।

निर्माण करने के तरीके तथा ज्योतिष, शकुनशास्त्र, ग्रादि विषय दिये गये हैं। विभिन्न स्थानों से प्राप्त सूचनाएँ भी इसमें अंकित हैं, जिनमें घोड़ा फिराने की चालें, शतरज की विधियाँ, पतंग बनाने, प्रातिशबाजी का सामान बनाने, कागज बनाने और शब्दवेधी बाण चलाने की विधि प्रमुख विषय हैं।[7] ऐसे प्रयोगों और कलाओं को प्रायः गुप्त रखने की ही परम्परा थी। अतः सम्भव है मंत्र-तंत्रात्मक गूढ प्रयोग या नुस्खों के लेखन के लिए ही इस लिपि का प्रयोग किया गया हो। प्राचीन आचार्यों ने मन्त्र -तन्त्र रसायनादि विद्यानों को गोपनीय रखने के निर्देश भी दिये हैं।[8]

सुबुद्धि की पोथी में 41.2×23.2 से. मी. आकार के कुल 553 पत्र हैं, जिनमें से 205 पत्र (410 पृष्ठ) इस लिपि में लिखे हुए और 345 पत्र रिक्त हैं। तीन पत्रों पर संख्याओं का अंकन छूट गया है। प्रत्येक लिखित पत्र में 30 पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में 28 अक्षर हैं। पोथी में पचासों रेखा चित्रों के अतिरिक्त 8 पत्र चित्रित हैं। इनमें से एक में शालिहोत्रानुसार अश्वों के शुभाशुभ परीक्षा के चित्र और अन्य 7 में तांत्रिक यन्त्रों के रेखाचित्र हैं। इन यन्त्रों में विजय यन्त्र, दश महाविद्यायंत्र, षटकोण अष्टदलयन्त्र, (द्रष्टव्य चित्र 11(अनुपलब्ध)), हनुमत्पताका यन्त्र (द्रष्टव्य चित्र 12) सूर्य प्रताप यन्त्र (द्रष्टव्य चित्र 13) तथा श्रीयन्त्र देवरिख (द्रष्टव्य चित्र 14) उल्लेखनीय हैं। सुबुद्धि की पोथी में ईश्वरशाही सांगानेरी घुटे हुए कागज का प्रयोग किया गया है।[9] पोथी में पुष्पिका के रूप में कोई प्रशस्ति लेख उपलब्ध नहीं है, जिससे ग्रन्थ के संकलनकर्त्ता, लेखक या लेखनकाल के विषय में कोई जानकारी मिल सके।

ग्रन्थारम्भ में नागरी अक्षरों के साथ-साथ समानांतर नागरी अंकों से युक्त सांकेतिक गणित लिपियों (अंक-पल्लवी) की तीन कुंजियाँ एक पत्र में दी गयी हैं। इन कुंजियों में से प्रथम के ग्रन्त में उक्त विचित्र लिपि में "छीतरमल" के और तीसरी कुंजी के अन्त में "फतेराम" नामक किसी व्यक्ति के हस्ताक्षर (नाम) लिखे गये हैं। इससे यह सम्भावना की जा सकती है कि उक्त दोनों व्यक्तियों का इस ग्रंथ के लेखन में हाथ रहा होगा। द्वितीय तालिका (कुंजी) में निर्दिष्ट नामवाला "फतेराम" ही इस लिपि का आविष्कर्ता या जानकार और इस ग्रन्थ का लिपिकर्ता भी हो सकता है।[10]

सुबुद्धि की पोथी में कतिपय ऐसे तथ्य उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर इसके संकलन और लिपिकाल के निर्धारण में सहायता मिलती है। ग्रन्थान्त में जिल्द की

7. ऐसे स्थानों में जहाँ से उक्त सूचनाएँ प्राप्त की गयी हैं, पीपाड़, रूपनगर, पुष्कर, हैदराबाद दक्खिन, आदि नाम प्रमुख हैं।

8. स्तोत्रं चाद्भुतमेवेदं त्रैलोक्ये चापि दुर्लभम्। गोपनीयं प्रयत्नेन यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥32॥ यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्य कदाचन। शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् ॥33॥ भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्योऽपि बान्धवेभ्यो न दर्शयेत्। दत्ते च सिद्धिहानिः स्यादित्याज्ञा शांकरः मता ॥134॥ मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति क्रुद्धा भवति सुन्दरी। प्रशुभं च भवेत्तस्य तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥135॥ (रुद्रयामलोक्त श्रीविद्यापञ्चमीस्तवराज), न देयं यस्यकस्यापि रहस्यं शास्त्रमुत्तमम्। एतद्देयं सुशिष्याय मनुवत्सरवासिने ॥12। (ब्रह्मसिद्धांत अध्याय 6 श्लोक 12), रहस्यमेतद् देवानां न देयं यस्यकस्यचित्। सुपरीक्षतशिष्याय देयं वत्सरवासिने ॥24॥

9. द्रष्टव्य ग्रन्थांक 74 एम. जे. एम., पोथीखाना, सवाई मानसिंह द्वितीय संग्रहालय, जयपुर

10. महाराजा सवाई मानसिंह (द्वि) संग्रहालय में हस्तलिखित ग्रंथ सं. 1105 'खा. मो) पर एक रेखाचित्र फतेराम बांकावत का केसर खां दरवान के साथ उपलब्ध है, जो सं. 1800 वि. के लगभग का है। फतेराम ढाल तलवार लिये, अंगरखी पहने, पगड़ी बांधे, राजसी वेशभूषा में आसनस्थ चित्रित हैं। सम्भव है, सुबुद्धि की पोथी में उल्लिखित फतेराम यही रहा हो। फतेराम बांकावत लवारण का निवासी था। फतेराम के नाम पर नाहरगढ़ के नीचे बारामोरी के पास एक टीला भी स्थित है, जिसे फतेराम का टीला कहते है किन्तु आगे अन्वेष्टव्य है।

चित्र संख्या 12. हनुमत् पताका यंत्र

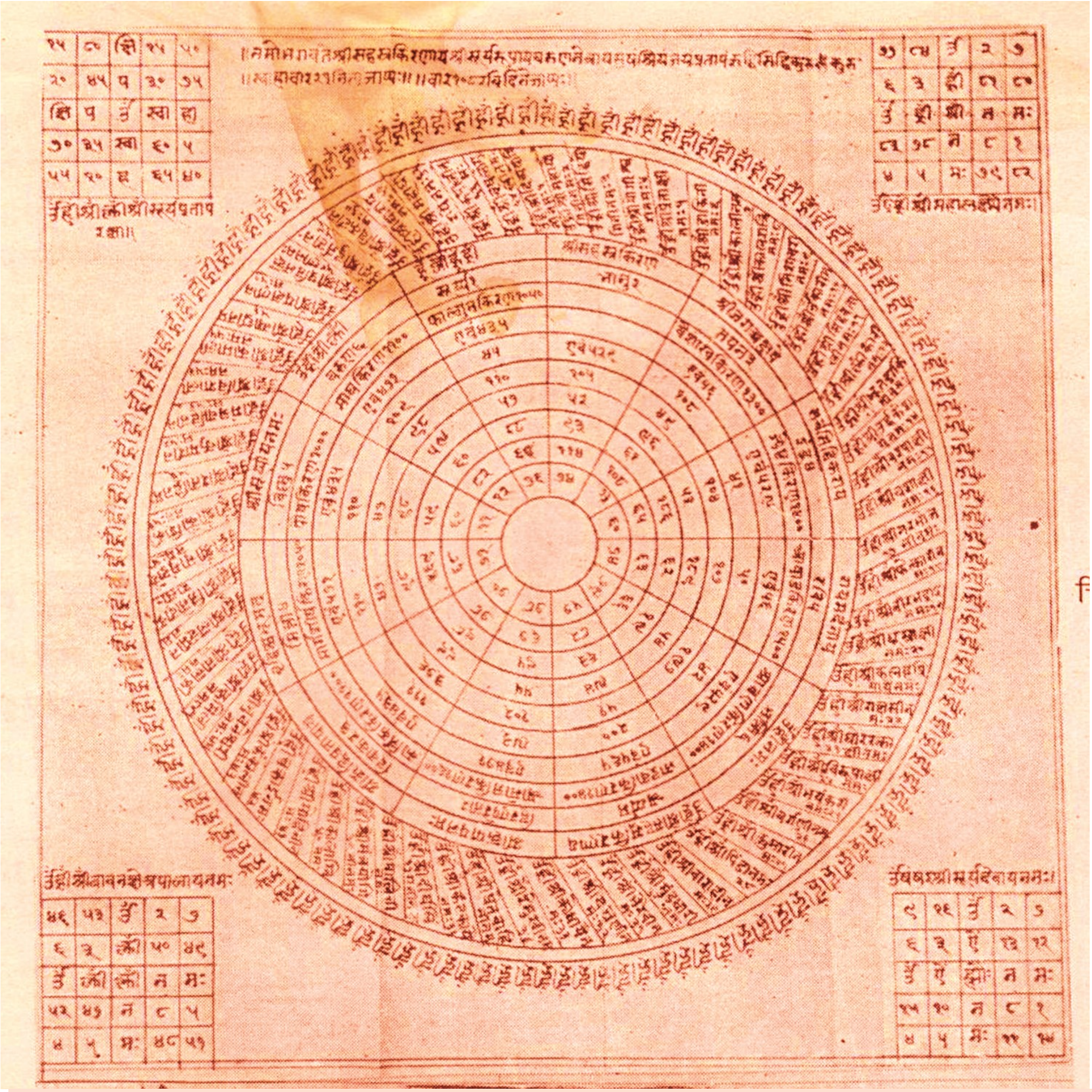

चित्र संख्या 13. सूर्य यंत्र

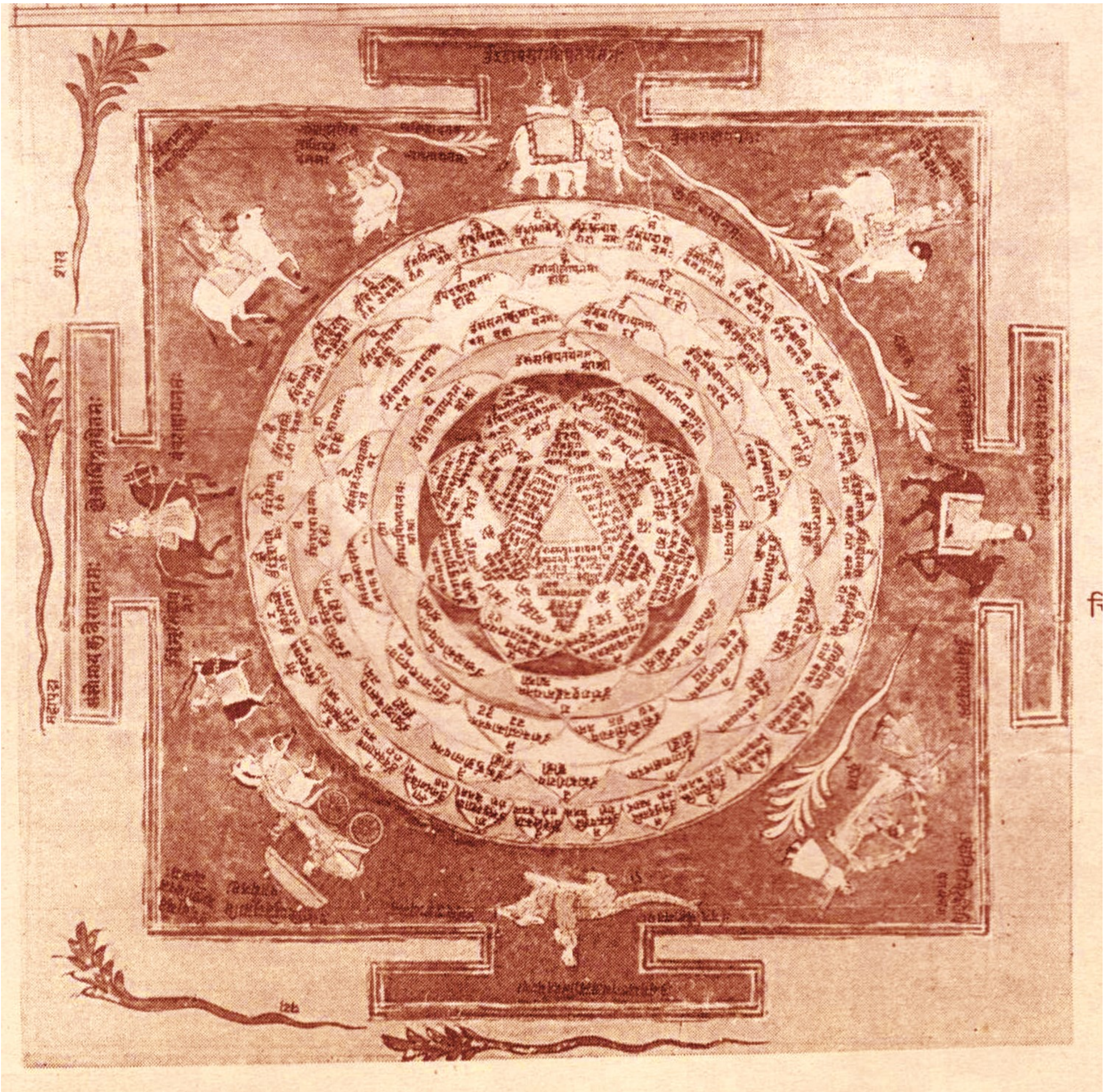

चित्र संख्या 14. श्रीयंत्र देवरिख यंत्र

संपुष्ट्यर्थ रिक्त छोड़े गये पत्रों में से एक में अरबी-फारसी मिश्रित दो लेख उपलब्ध हैं। इनमें से एक में संकेत दिया गया है कि यह लेख बादशाह अहमदशाह के राज्यकाल में महाराजा ईश्वरी सिंह जयपुर के लिये लिखा गया था। इसके साथ दिया गया 72 संख्या का यन्त्र बादशाह को सूचित और वश में रखने के लिये लिखा गया है। ये लेख और यन्त्र निम्न प्रकार हैं–

"बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम"

27	↓ 20	21
22 →	24	← 25
23	↑ 28	26

अल्लहुम्मा या मन्हुरूसूल अर्ज सहरलुल मालिकुल मुलूक या बासित

बहके या जब्राईल व इलाही हुम्मा बेहुरमते अनफुस अहमदशाह बादशाह अस्त (सिब्त?) बराये हस्ब राजा:

ईश्वरीसिंह सिप्त मनहुग्रा व हमा बराये मुतल्ल: व तस्फीर अन्द।[11]

उपर्युक्त लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पोथी का लेखन सं. 1805 वि. (जब अहमदशाह बादशाह बना) और सं. 1807 वि. (जब सवाई ईश्वरी सिंह का देहावसान हुआ) के मध्य की अवधि में हुआ और महाराज की मृत्यु हो जाने पर इसका लेखन बीच में ही छोड़ दिया गया।

सुबुद्धि की पोथी में पत्र सं. 464 पर इसी गूढलिपि में अंकित महाराजाधिराज (ईश्वरी सिंह) और माधवसिंह की जन्मकुंडलियाँ भी इस निष्कर्ष में सहायक सिद्ध होती हैं कि इस ग्रन्थ का लेखनकाल महाराजा ईश्वरी सिंह का राज्य-काल ही रहा है।

पोथी की जिल्द के पुष्टीकरण हेतु अन्दर की ओर जोड़े गये अतिरिक्त पत्रों में से एक में इसी विचित्र लिपि में दी गयी तालिका में महाराजा ईश्वरी सिंह और उनके निकटस्थ अमात्यों और सम्बन्धियों की सूची, जिसमें उनकी माताओं और पत्नियों के नाम अंकित किये गये हैं, भी उक्त निष्कर्ष सहायक सिद्ध होती है।

विचित्र लिपियों के स्वरूप

सुबुद्धि की पोथी में प्रयुक्त लिपि में ङ और ञ अक्षरों को छोड़कर देवनागरी लिपि के समानान्तर सभी ध्वनियों के लिए लिपि-चिह्न उपलब्ध हैं।

लिपि को सुगम बनाने के लिए व्यंजनों के प्रत्येक वर्ग के प्रथम अक्षर को मूल अक्षरात्मक चिह्न बनाया गया है। अन्य तीन वर्ण, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ, इन्हीं मूल अक्षरों में ऊपर या नीचे क्रमश: एक, दो और तीन नुक्ते (बिन्दु) लगाकर बनाये गये हैं। क, च, ट और प वर्ग के अक्षरों में नुक्ते ऊपर की ओर लगाये गये हैं, जबकि त वर्ग और य वर्ग के अक्षरों में नीचे की ओर। श, ष, स और ह की स्थिति किंचित् भिन्न है। इसमें श के चिह्न में ही यत्किंचित् परिवर्तन करके अन्य अक्षरों ष, स और ह को रूप दिया गया है।

कवर्ण की आकृति अरबी-फारसी के बे, पे आदि अक्षरों की जैसी परन्तु नुक्तारहित या चपटे पैंदे की नौका

11. ख़ुदा के 99 नाम कहे गये हैं, उनसे एक नाम बासित की है, जिसके 72 अदद है। वासित के माने हैं बढोतरी करने वाला (फराख करने वाला) करबला की लड़ाई में 72 आदमी शहीद हुये थे, उनके पुण्य स्मरण में 72 का यन्त्र लिखा जाता है।
(श्री मोहम्मद सादिक अली सा. जैदी, भूतपूर्व जागीरदार हसामपुर (तोरावाटी, रियासत जयपुर) से प्राप्त जानकारी) मालिक जो बहुत दयालु है, के नाम से शुरू करता हूं। मेरे मालिक! ऐ बादशाहों के बादशाह! ऐ दाता। जी (फरीश्ता) के माध्यम से पौर ऐ मेरे मालिक, बजरिये नक्सों के अहमदशाह बादशाह को राजा ईश्वरी सिंह के लिए सदा सूचित और वश में रखना।

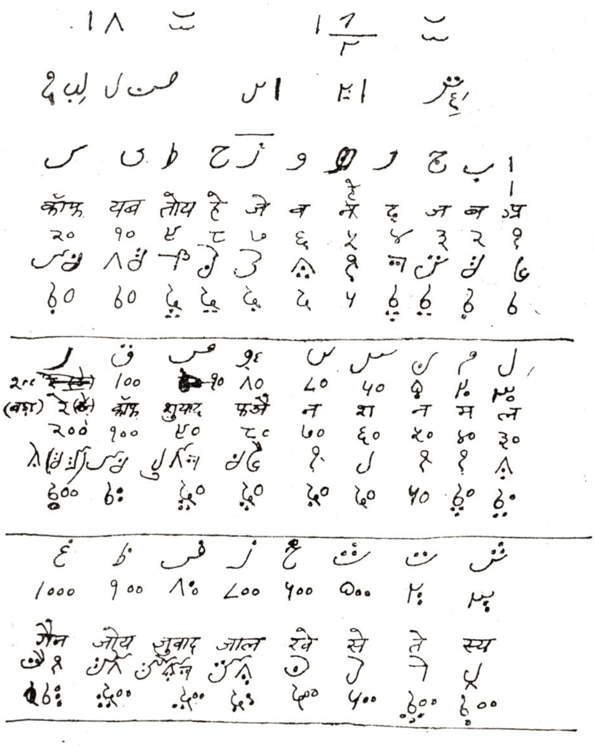

के समान बनाई गयी है। च अक्षर नस्खी के छोटी ये अक्षर की भांति बनाया गया है।

ट अक्षर के लिए दो रेखाओं से निर्मित एक समकोणीय आकृति का चयन किया गया है, जिसमें समकोण बनाने वाली रेखा आधार रेखा के दक्षिण या वामपार्श्व में ऊर्ध्वमुखी संयुक्त की गयी है।

त अक्षर की आकृति ट अक्षर की प्राकृति से सर्वथा विपरीत अवस्था में अधोमुखी एवं समकोणी है।

प अक्षर अशोक कालीन ब्रह्मी के च अक्षर की आकृति वाला एक चक्षु बनाया गया है। इसका ऊपरी भाग किंचित् वक्र और तिर्यक् रूप लिये हुए है।

म अक्षर देवनागरी अंकों में एक संख्या के लिये प्रयुक्त चिह्न जैसा बनाया गया है। कहीं कहीं यह अरबी के मीम के चिह्न जैसा भी लिखा हुआ मिलता है।

इसी चिह्न की दक्षिण कटि में घुण्डी की कुक्षि में हलन्त चिन्ह के आकार की ह्स्वरेखा संयुक्त करके न अक्षर का चिह्न बनाया गया है।

नुक्तों के लेखन के लिये कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है। ये नुक्ते सुविधानुसार एक दूसरे के समानान्तर ऊपर, या तिरछे, किसी भी रूप में लगाये जा सकते हैं।

ङ, ञ और अ के लिये प्रयुक्त बिन्दु प्रक्षर चिन्ह के ऊपर अनुस्वार के चिन्ह के रूप में लगाया गया है, पर इस बात का ध्यान रखा गया है कि वह नुक्ता अक्षरों के नुक्तों से दूर रखा जावे, उनमें न मिल जाए।

संयुक्ताक्षर लिखने के लिये पश्चात्-वर्ती वर्ण का संयोजन पूर्ववर्ती अक्षर के पाद भाग में किया गया है।

वर्णों के ऊपर देवनागरी में प्रयुक्त रेफ, पाद भाग में लगने वाला र तथा स्वरों के लिये प्रयुक्त मात्राचिन्हों का क्रम भी देवनागरी के समान ही है। इनके लिये भी प्रायः नये ही चिन्ह अपनाये गये हैं।

'सुबुद्धि पोथी' जैसा कि पूर्व में बताया गया है, अनेक विषयों का संग्रह है। इसके लेखक ने पोथी लिखने की योजना बनाते समय प्रत्येक विषय के लिये पत्र संख्या निश्चित करके प्रारम्भ में एक विस्तृत सूचनिका बनाली थी। जो कुछ सामग्री उसके पास उपलब्ध थी, उसको निर्धारित पत्रों में उसने लिख लिया। बीच बीच में कई पत्र उसी कारण से उसे रिक्त छोड़ने पड़े।

पोथी के प्रारम्भ में चार पत्रों में उसने पुस्तक में समाविष्ट विषयों की सूची पत्र संख्या सहित देवनागरी लिपि में दी है। यह सूचनिका पत्र

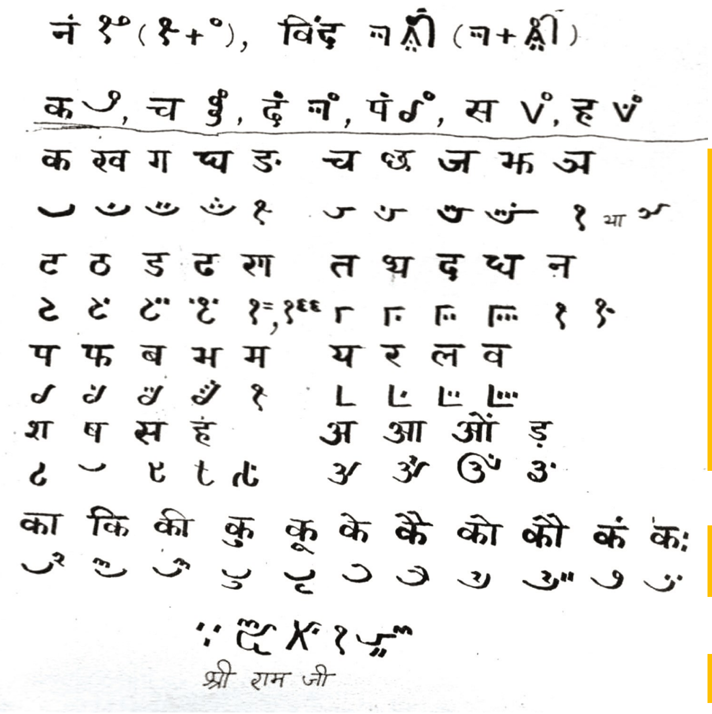

चित्र. 15 स. पाशाकेवली के अनुस्वार सूचक चिह्न

चित्र 15.द MJM ग्रन्थांक 916 के स्फुटपत्र के लिपिचिह्न

चित्र 15 इ

चित्र 15 ई.

संख्या और विषय के क्रम में तीन तीन खण्डयुग्मों में आवंटित कर लिखी है। यही सूचनिका पत्र– सामान्य अन्तर के साथ ग्रंथारम्भ में ही इस विचित्र सांकेतिक लिपि में पुनः दी गयी है। जिसने इस लिपि का शोध करने हेतु मेरे लिये कुंजी का काम किया है। वर्ण-माला और अंक चिन्हों की तालिकाएँ पोथी के संलग्न पत्रों में दी गई हैं।

विचित्र लिपि में लिखित दूसरा ग्रन्थ ज्योतिष का है, जिसे पाशा-केवली[12] नाम दिया गया है। यह सामान्य अन्तर के साथ इसी सांकेतिक लिपि में लिखा गया है। यह लिपि दाहिनी घोर से बायीं घोर लिखी गयी है। इसमें मात्राएँ अक्षर के दाहिनी ओर देव-नागरी की ही लगाई गयी हैं, परन्तु लिपि के दाहिनी घोर से लिखे जाने के कारण अक्षरों के साथ संयोजन को पृष्ठमात्रिक ही कहेंगे। इस प्रकार के संयोजन के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं। (द्रष्टव्य चित्र 15अ)

उ की मात्रा के लिये पूर्ववत देवनागरी का मात्राचिन्ह ही प्रयुक्त हुआ है, पर दीर्घ क कार के लिये हस्व उकार के चिन्ह को ही द्वित्व कर काम चलाया गया है। कतिपय अक्षर सुबुद्धि की पोथी के अक्षरों से सर्वथा भिन्न स्वरूप वाले है। (चित्र 15 ब)

इस लिपि में यद्यपि संस्कृत के श्लोक ही लिखे गये हैं, परन्तु श और ष के लिये कोई स्वतन्त्र चिन्ह नहीं अपनाये जाकर देवनागरी अक्षरों से ही काम चलाया गया है। श के लिये कहीं कहीं दन्त्य स के चिन्ह का ही प्रयोग कर लिया गया है। ह अक्षर के लिये स के चिन्ह पर ऊपर की पोर एक नुक्ता लगाकर नया सांकेतिक चिन्ह बनाया गया है। ये चिन्ह पूर्वसूचित सुबुद्धि को

12. म. स. मानसिंह संग्रहालय के पुंडरीक संग्रह में ज्योतिष ग्रंथांक 165 पर उपलब्ध "चमत्कार-चिन्तामणि में उक्त "पाशाकेवली" ग्रंथ के सभी श्लोक यथावत् मिलते हैं। अतः इस ग्रंथ का नाम "पाशाकेवली" के स्थान पर चमत्कार-चिन्तामणि" होना चाहिए।

पोथी के य वर्ग से सर्वथा उल्टे बनाये गये हैं।

अनुस्वार सूचक चिन्ह को अक्षर के साथ संयुक्त कर दिया गया है, जिससे अन्य नुक्तों के साथ मिलकर कोई भ्रम की स्थिति उत्पन्न न कर दे (द्रष्टव्य चित्र 15 स)। छुटे हुए अक्षरों के लिये हंसपाद का चिह्न लगाया गया है। इस वर्णमाला में एक दो अक्षरों में सामान्य अन्तर को छोड़ कर कोई विशेष अन्तर नहीं है। पर जहाँ तक मात्राओं का प्रश्न है लेखक ने पूर्णतः नागरी के मात्रा चिह्नों का संयोजन कर नवीन प्रयोग किया है।

इस ग्रन्थागार के एम. जे. एम. संग्रह में ही ग्रंथांक 916 पर पाँच स्फुट पत्र इस सांकेतिक लिपि में लिखे मिलते है। प्रतीत होता है कि ये पत्र किसी व्यक्ति के अभ्यास पत्र है या फिर लेखक को वर्तनी ही दोषपूर्ण है। इसमें कहीं कहीं अक्षरों को दोहरा भी लिखा गया है। इन पत्रों में प्राप्त वर्णमाला में कतिपय अक्षर पूर्वोक्त ग्रन्थों के प्रक्षरों से भिन्न हैं। मात्रा-चिन्हों में आ, इ, ई, ओ और औ के चिह्न तथा व्यंजनों में ट वर्ग और च वर्ग के चिह्नों में भी भिन्नता मिलती है।

आ की मात्रा का काम अक्षर के दक्षिणस्थ शीर्ष भाग पर 2 संख्या का चिह्न लगाकर निकाला गया है। इसी के आगे खड़ी पाई लगाकर बने सबादी के चिह्न से ओ की मात्रा और दो पाइयाँ लगाकर बने 2।। के चिह्न से औ की मात्रा के चिह्न बनाये गये हैं। इ और ई की मात्रा के लिये देव नागरी के इ अक्षर को या 3 संख्या के आड़े चिह्न का प्रयोग किया गया है। यह चिह्न अक्षर के दक्षिण शीर्ष भाग पर अन्तर्मुखी संयोजन करने पर इ और बहिर्मुखी संयोजन करने से ई की मात्रा का काम देता है। उ की मात्रा के लिये अक्षर के नीचे देवनागरी की ह्रस्व उ मात्रा के खुले अंकुड़ी वाले रूप या ब्राह्मी के ठ चिह्न का और दीर्घ ऊ की मात्रा के लिए उक्त प्रथम ह्रस्व उकार की मात्रा के चिह्न को दक्षिणावर्त कर दिया गया है।

कतिपय अक्षर नागरी के हो यत्र तत्र सामान्य परिवर्तन के साथ प्रयुक्त हुए हैं। ये अक्षर अ, आ, ओ, ञ और इ है। अक्षर को स्वरचिह्न (खड़ी पाई) से विहीन कर दिया गया है। यही स्थिति ञ अक्षर की भी है। ट वर्ग के अक्षरों को किसी पत्र में समकोणीय से बदल कर उसकी समतलीय रेखा को किंचित ऊपर उठा दिया गया है। सुबुद्धि की पोथी में ट वर्ग के लिये प्रयुक्त चिह्नों का प्रयोग इन पत्रों में य वर्ग के लिये किया गया है। च वर्ग के अक्षरों को इसमें थोड़ा सपाट बना दिया गया है। मूर्धन्य व के लिए ध्वनि का चिह्न ही प्रयुक्त हुआ है। श, स, और ह के चिह्नों में भी किचित परिवर्तन किया गया है।

इस लिपि की विशेषता मूल रूप में अक्षरों को देवनागरी की भांति बाए से दाहिनी घोर लिखने की है। इन पांच पत्रों में से एक के लिपिचिह्न चित्र 15 द में दिये गए हैं।

मात्रा-चिह्नों के लिये भी पूर्वोक्त से सर्वथा भिन्न प्रणाली और चिह्नों का प्रयोग किया गया है। (द्रष्टव्य चित्र 15 इ) प्रक्षरों के पाद भाग में र का संयोग दक्षिणावर्त किया गया है। 'श्री रामजी' शब्द में यह प्रयोग द्रष्टव्य हैं (चित्र 15 ई) इन पत्रों में आयुर्वेदिक औषधियों के नाम लिखे गये हैं। इनमें से कुछ उल्लेखनीय हैं जैसे– पालकी, खुरासांनी, पारो, भिलावा, चितरख, कायफल, तेजबल, हकलकरहो, सुंठ, मिरच, हजवाण, लोहबारण, काजीबीज, सहागध, खोपरा, पोकरमूल, कूठ, बच, धणू, कुलीजन, पीपली, नागकेशर, चारोली, गुड़, धुणी, थूथ, हींगलू, रेवतचूनी, जुलाब, मैण-फल, पोश्तचाडो, उनाब, तुरबद, मुन, बिसफाइज, तुरंजमी, सिरखस्त, पोस्त, तुख्म हलियान, तुरंज, अंजीर, अमलताश, आलुबुखारा, कुंबा, अनसुन, आपसंतीन, अपतिमुन, अमलताश, हरडे, सनामकी, बोख, परासउसा, बादरंजबोया, मुनखा, बनपसा,

तुख्मसलरीन, अंजरत, गुलाबकापुर, बुल-संच, मिसरीब, तुख्मकरपस, सातहया, गुलकंद, बैशमनश, पैदरगोर तथा जड़।

इस लिपि में दो शब्दों के मध्य विभाजक चिन्ह या विराम के रूप में॥ दो खड़ी पाइयों अथवा विसर्ग के चिह्न (:) का उपयोग किया गया हैं।

एक अधूरे लिखे खत के खेरूज पत्र से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सांकेतिक लिपि के रूप में महाराजा और उनके दिल्ली में स्थित वकील, या दूतों से अथवा महाराजा के निजी सचिव से पत्र व्यवहार में इन लिपियों का प्रयोग होता था। प्राप्त पत्र इसका एक उदाहरण है। पत्र का देवनागरी रूपान्तरण भी साथ में दिया जा रहा है। (दृष्टव्य चित्र 14 अ) *(यह चित्र अनुपलब्ध है)*

श्रीरामजी
अपरंचि लिख्यौ जा पाद-
साही फरमान प्रावे अर हज-
रति दस्तगीरी करे तो
तु फर हजरति का स
मुलक प्रावादान रहे सो क-(र)

प्राचीन काल में प्रचलित अंक-पल्लवी, रेखा पल्लवी और शून्य पल्लवी नाम की सांकेतिक लिपियां मिलती हैं। अंक-पल्लवी में नागरी लिपि के अ, क, च, ट, त, प, य और श इन आठ वर्गों के अनुसार 1 से 8 तक के अंक प्रदत्त किये होते हैं। प्रत्येक वर्ग में पुनः वर्णो को क्रमश: 1 से 5 अंक और चार अक्षरों वाले अंतिम दो वर्गों को 1-4 अंक दिये होते हैं। शून्य पल्लवी में शून्यांकों में हल्के और गहरे शून्यों में लघु और गुरु सूचक संकेत निहित रहते हैं। इसी प्रकार रेखा-पल्लवी में हल्की और गहरी रेखाओं से संकेत प्राप्त किये जाते हैं।

प्रस्तुत तालिकाओं में से प्रथम तालिका में क वर्ग को 21 से 25, च वर्ग को 31-35, ट वर्ग को 41-45 और अन्य वर्गों को भी इसी क्रम में 5-5 अंकों का मध्यान्तर देते हुए क्रमश: 51-55 (त वर्ग), 61-65 (प वर्ग) 71 अंक दिये गये है। य वर्ग को 71 से 74, स को 75 और ह को 81 अंक प्रदान किये गये हैं। इसी प्रकार इस तालिका में अ को 11 ई को 14 और श्री को 19 अंक दिये गये हैं। इनके मध्य के अक्षरों आ, इ, उ, ऊ, ए, ऐ, को 12, 13, 15, 16, 17 और 18 अंक मान लेना चाहिए।

द्वितीय तालिका में प्रत्येक वर्ग के प्रथम चार वर्गों को ही अंक दिये गये हैं। पंचम वर्ण की कोई संख्या निश्चित नहीं की गयी है। इस प्रकार क वर्ग को 1 से 4, च वर्ग में 11 से 14, ट वर्ग में 21 से 25, त वर्ग को 31 से 35, प वर्ग में 41 से 45, य वर्ग में 51 से 54, और स और ह अक्षरों को 61 और 62 अंक दिये गये हैं। अ अक्षर को 71, ई को 72, ऊ को 73, ऐ को 74, और अन्तिम श्री को 75 अंक दिये गये हैं।

तीसरी तालिका में क को 5, ग को 13, छ को 14, ज को 15, उ को 11, रग को 7, द को 8, ब को 10, भ को 12, म को 1, र को 3, ल को 6, व को 4, और ह को 2 अंक प्रदत्त है। अन्य अक्षर लिखे गये हैं, पर उनके अंक निश्चित किये गये नहीं मिलते। यह तालिका जैसा कि पूर्व में लिखा गया है, अपूर्ण है।

इससे स्पष्ट है कि ये तालिकाएँ संकेत लिपियों के ही रूप में तैयार की गयी थी। इन तालिकाओं के साथ लिखे नाम ही संभवत: संकेताक्षर निर्माण करने वाले व्यक्ति हैं। द्वितीय तालिका की वर्णमाला विचित्र लिपि की वर्णमाला से लग- भग मिलती है। अत: यह भी अनुमान होता है कि यह द्वितीय तालिका में निर्दिष्ट नाम वाले फतेराम की ही यह उपज होगी।

सांकेतिक लिपि-अंक

अ 11			ई 14	
			ओ 19	
क 21	ख 22	ग 23	घ 24	(ङ) 25
च 31	छ 32	ज 33	झ 34	(ञ) 35
ट 41	ठ 42	ड 43	ढ 44	ण 45
त 51	थ 52	द 53	ध 54	न 55
प 61	फ 62	ब 63	भ 64	म 65
य 71	र 72	ल 73	व 74	स 75
ह 81				

हस्ताक्षर (छीतरमल)

दूसरी तालिका

अ 71	ई 73	ऊ 73	ऐ 74	औ 75
क 1	ख 2	ग 3	घ 5	
च 11	छ 12	ज 13	झ 14	
ट 21	ठ 22	ड 23	ढ 24	ण 25
त 31	थ 32	द 33	ध 34	न 35
प 41	फ 42	व 43	भ 44	म 44
य 51	र 52	व 53	व 54	
स 61	ह 62			

हस्ताक्षर (फतेराम)

तीसरी तालिका

क 5	ष	ग 13	घ	न
च	छ 14	ज 15	झ	न
ट	ठ	ड 11	ढ	ण 7
त	थ	द 8	ध	न
प	फ	ब 10	भ 12	म 1
य	र 3	ल 6	व 4	ह 2

और आंक घटती का ज्यों लिखणा—

भारतीय गणित शास्त्र में संख्यांकों के स्थान पर वर्णमाला के वर्णाक्षरों का प्रयोग पुराकाल से चला आया है। ऐसी मान्यता है कि वैदिक मन्त्रों में भी गणित के सूत्र इसी वर्णाक्षर प्रणाली में निबद्ध किये गये हैं। इस प्रणाली को "कटपयादि" प्रणाली नाम दिया गया है। आर्यभट्ट (प्रथम) ने इससे भिन्न अपनी अलग ही प्रणाली का आविष्कार किया या संख्या विन्यास परिभाषा विषयक एक श्लोक आर्यभट्टीय गीतिका पाद से नीचे दिया जा रहा है।

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कातु ङ मौ यः।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्ग वा॥2॥

प्रस्तुत सांकेतिक लिपि तालिकाओं में विपरीत प्रणाली को अपनाया गया है। इसमें अंकों के स्थान पर अक्षरों के मान का प्रयोग न करके अक्षरों के स्थान पर संख्याओं का प्रयोग कर संदेश को गोपनीय बनाने के प्रयोग किये गये हैं।

सुबुद्धि की पोथी में ऐसी ही एक अन्य अंकात्मक सांकेतिक लिपि दी गयी है, जो अरबी, फारसी में प्रचलित रही है। ये अक्षर और अंक भी अरबी में प्रचलित हैं। इनके साथ पूर्वोक्त सांकेतिक अक्षर और सांकेतिक लिपि के अंक दिये गये हैं। प्राप्त तालिका का एक पृष्ठ नीचे देवनागरी प्रक्षरों और अंकों के साथ पृष्ठ 278 पर दिया जा रहा है।

जयपुर में प्रचलित इस प्रकार की अंकात्मक सांकेतिक लिपि के पांच अन्य प्रयोगों का उल्लेख श्री नरेन्द्र कुमार शर्मा ने **द इण्डियन ऑरकॉइब्ज** पत्रिका में प्रकाशित अपने एक लेख किया है। इस लिपि में लिखे अभिलेख राजस्थान राज्य अभिलेखागर, बीकानेर में पत्रावली सं. 28 दीवानी हजुरी, जयपुर अभिलेख, बस्ता क्रमांक 15 में उपलब्ध हैं। अक्षरों के स्थान पर अंकों में बँधी होने के कारण इस प्रकार की

बँक लिपि के पत्रों को "बांधणी का कागज" कहा गया है। इस प्रकार के लेखन को श्री नरेन्द्र कुमार शर्मा ने पाँच विधियों की विद्यमानता की ओर संकेत किया है। यथा–

प्रथम विधि के लिये निर्धारित अंक

अ 5	इ 6	उ 7		
क 9	ख 10	ग 11	घ 12	
च 13	छ 14	ज 15	झ 16	
ट 17	ठ 18	ड 19	ढ 20	ण 21
त 22	थ 23	द 24	ध 4	न 1
प 25	फ 26	ब 27	भ 28	म 2
य 29	र 30	ल 31	व 32	
ह 33				

इन चिह्नों को परस्पर मिल जाने से रोकने या पृथक करने के लिये उनके मध्य में सतहड़ी (अंकुड़ी) लगाई जाती थी, यथा-

क 9) ख 10) थ 23) फ 26) स 3)

संकेत चिह्नों के साथ स्वरों की मात्राओं के बन्ध निम्नलिखित विधियों से किये जाते थे।

संकेत लिपि की दूसरी पाटी में उपर्युक्त अक्षरों के लिए निर्धारित मूल अंकों में कोई भी निरर्थक एक अंक प्रौर संयुक्त करके तदुपरान्त मात्रा चिह्न और सतहड़ी का संयोजन किया जाता था, यथा-

हा = 330ा (निर्धारित अंक 33+ निरर्थक अंक 0 + ा)
ला = 313ा (निर्धारित अंक 31 + निरर्थक अंक 3+ा)
ति = ि225 (निर्धारित अंक 22 + भ्रामक निरर्थक अंक 5+ि)

अन्त में मूल अंक पर मात्रा अंक लगाकर सतहड़ी का बन्ध दे दिया जाता था।

तीसरी विधि में अक्षरों के पूर्वोक्त निर्धारित अंकों के स्थान पर नवीन अंक निर्धारित किये जाते थे और बीच-बीच में अंकों के स्थान पर यत्र-तत्र अक्षर लिख दिये जाते थे।

आ 11				
क 1	ख 13	ग ×	घ ×	ङ ×
च 9	छ ×	ज 5	झ ×	ञ ×
ट ×	ठ ×	ड ×	ढ ×	ण ×
त 10	थ 16	द 7	ध 6	न 3
प ×	फ ×	ब 4	भ ×	म 14
य 11	र 8	ल 2	व 40	
स 12	ह 15			

इस विधि में मात्राओं का संयोजन पूर्वोक्त विधि के अनुसार ही किया जाता था। इस प्रणाली में सतहड़ी का प्रयोग नहीं किया जाता था। निरर्थक अंकों का संयोजन इस विधि में भी किया जाता था।

चतुर्थ विधि में भी उपर्युक्त तीसरी विधि के अनुरूप हर अक्षर के लिए संकेत अंक निर्धारित नहीं होते थे उन्हें मूल रूप में ही वहाँ लिख दिया जाता था। ऐसी वर्णमाला नीचे दी जा रही है-

अ 49				
क 49	ख 36	ग –	घ –	ङ –
च 33	छ 54	ज 57	झ –	ञ –
ट –	ठ –	ड –	ढ –	ण –
त 42	थ –	द –	ध –	न 12
प 51	फ –	ब 21	भ 19	म 15
य 27	र 9	ल 24	व –	
स 3	ह 18			

सतहड़ी का उपयोग इस वर्णमाला या अंकाक्षर माला में भी नहीं होता था।

पाँचवीं विधि में तीसरी और चौथी के अनुसार अपूर्ण संकेताक्षर नहीं होते थे– अपितु सभी अक्षरों के लिए संकेतांक निर्धारित थे। वे इस प्रकार थे-

अ 2				
क 6	ख 7	ग 8	घ 9	ङ 10
च 11	छ 12	ज 13	झ 14	ञ 15
ट 16	ठ 17	ड 18	ढ 19	ण 20
त 21	थ 22	द 23	ध 24	न 25
प 26	फ 27	ब 28	भ 29	म 30
य 31	र 32	ल 33	व 34	
स 35	ह 36			

इनके साथ भी सतहड़ी का संयोजन नहीं किया जाता था। गुप्त संदेश- प्रेषण के लिये जयपुर राज्य में एक और भी शैली प्रचलित थी, जिसमें लेख दाएँ से बाएँ या बाएँ से दाहिनी ओर लिखने के स्थान पर चीनी या जापानी लेखन शैली की भांति ऊपर से नीचे की ओर शीर्षपाद शैली में लिखे जाते थे। इसमें देवनागरी अक्षरों का ही प्रयोग किया जाता था। शैली से अपरिचित व्यक्ति संदेश को पढ़ने में असमर्थ रहते थे। वकील-रिपोर्ट, जयपुर (मराठा पेपर्स) अभिलेख क्रमांक (3), राजस्थान राज्य अभिलेखागार के अनुसार प्रस्तुत किया गया उदाहरण निम्न प्रकार है-

ष	षां	सा	ज	भ	तु	की	ह
ली	नै	ह	ग	ला	म	जै	षु
ल	ली	की	ता	है	ज	तु	सी
षां	खीं	म	स्यै	ती	ग	म	है
अ	छै	र	मे	स	ता	सै	ही
सा	की	जी	ल	वा	का	पा	गे
ल	पा	है	की	स	मे	ती	ही
त	ती	की	ये	तै	ल	सा	इ
ई	ल	ता	सा	व	जै		
स	वा	क	व	ह	ली		
तै	त	री	लै	जा	छै		
अ	कै	वा	ह	दा	की		
सा	वा	नै	वै	कै	भी		
ल	स	घ	छै	भी	ला		
त	तै	न	अ	उ	प		
षां	में	उ	र	ता	की		

उपर्युक्त लेख का ऋजु-पाठ निम्नांकित है-

"खलील खाँ असालत खाँ ने लिखी छै कै पातशाह की मरजी है कि जग-तास्यै मेल कीये भला है तीस वासतै तुम जगता का मेल कीजै तुम से पातसाह खुश है हीगे ही इ वासतै असालत खां ई बात के वासते मेल करीवा नै घनै उतावल हवै छै अर साहजादा के भी उतावली छै की मीलाप कीजै।।"

***

भगवान् श्रीराम द्वारा क्रियायोग का वर्णन

डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता
'मानसश्री, मानस शिरोमणि, विद्यावाचस्पति एवं विद्यासागर
सीनि. एमआईजी-103, व्यास नगर,
ऋषिनगर विस्तार, उज्जैन (म.प्र.)

निगम, आगम, बौद्ध तथा जैन-साहित्य में चार तथ्यों का प्रतिपादन हुआ है। इन तथ्यों को चार पाद अथवा चार योग के नाम से जाना जाता है- ज्ञानपाद, योगपाद, क्रियापाद एवं चर्यापाद। ज्ञानपाद- दार्शनिक साहित्य, योगपाद - योगसंबन्धी साहित्य, क्रियापाद- कर्मकाण्ड (पूजा-पाठ आदि) चर्यापाद- दैनिक आचरण एवं व्यवहार। इन चारों का सम्मिलित रूप हमारे धर्म की अस्मिता है। रामोपासना के परिप्रेक्ष्य में अध्यात्म-रामायण में हम इन चारों का समाहार पाते हैं। यहाँ अध्यात्म-रामायण से रामोपासना का कर्मकाण्ड स्पष्ट किया गया है। इसका उपदेश स्वयं श्रीराम के मुख से लक्ष्मण को दिया गया है। रामकथा के इस महत्त्वपूर्ण प्रसंग को लेखक ने यहाँ कथा की शैली में व्यक्त किया है।

श्रीराम जब पंचवटी में सीताजी एवं लक्ष्मण सहित निवास कर रहे थे तब लक्ष्मणजी ने एकान्त में बैठे हुए भगवान श्रीराम के साथ अत्यन्त ही नम्रतापूर्वक पूछा — भगवान मैं आपके मुख से मोक्ष का निश्चित साधन सुनना चाहता हूँ। अत: हे कमलनयन आप उसका संक्षेप में वर्णन कीजिए। हे रघुकुल श्रेष्ठ! आप मुझे भक्ति और वैराग्य से सना हुआ (युक्त) विज्ञानयुक्त ज्ञान सुनाइये। इस संसार में आपके अतिरिक्त इस गहन विषय का उपदेश करने वाला और कोई नहीं है। श्रीराम ने भी गुह्य से गुह्य यह परम रहस्य लक्ष्मण को सुनाया जिसका अध्यात्म-रामायण के अरण्यकाण्ड में चतुर्थ सर्ग में विस्तारपूर्वक बताया गया है। किष्किन्धाकाण्ड में पुन: लक्ष्मणजी ने एक दिन एकांत में ध्यान करते हुए भगवान श्रीराम से उनके समाधि खुलने पर लक्ष्मणजी अत्यन्त प्रेम और भक्तिभाव से भरकर नम्रतापूर्वक कहा भगवन् आपने मुझे जो उपदेश पहले दिया था। उससे मेरे हृदय का अनादि अविद्याजन्य सन्देह तो दूर हो गया है किन्तु—

इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्रियामार्गेण राधव।
भवदाराधनं लोके यथा कुर्वन्ति योगिन:॥[1]

हे राघव योगिजन क्रिया मार्ग (पूजा-पद्धति) से जिस संसार में आराधना किया करते हैं। इस समय में इसे आपसे सुनना चाहता हूँ। समस्त योगिजन एवं

1.अध्यात्मरामायण किष्किन्धाकाण्ड सर्ग 4-8

देवर्षि नारदजी, महर्षि व्यासजी और ब्रह्माजी भी इसी को मुक्ति (मोक्ष) का साधन निरूपित करते हैं। हे राजराजेश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ आदि आश्रमों को मोक्ष देने वाला यही साधन है और स्त्री तथा शुद्रों की भी इसी साधना से सुगमता से मुक्ति हो सकती है। हे प्रभो! मैं आपका भक्त और भाई हूँ। अत: आप मुझे इस लोकोपकारी (लोक-कल्याण-कारी) साधन का वर्णन कीजिये।

स्वगृह्योक्तप्रकारेण द्विजत्वं प्राप्य मानव:।
सकाशात्सद्गुरोर्मन्त्रं लब्ध्वा मद्भक्तिसंयुत:॥[2]

श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा— हे लक्ष्मण! मेरी पूजा-विधि का कोई अन्त नहीं है तथापि मैं क्रमश: उसका संक्षेप में यथावत् वर्णन करता हूँ। मेरी भक्ति से सम्पन्न मनुष्य अपनी शाखा की गृह्यसूत्र द्वारा बतलाये गये प्रकार से (उपनयन-संस्कार के अनन्तर या यज्ञोपवीत) द्विजत्व प्राप्त कर भक्तिपूर्वक सद्गुरु के पास जाय और उनसे मन्त्र ग्रहण करें।

तदनन्तर बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि उन गुरुदेव की बतायी हुई विधि से अपने हृदय में अग्नि में, प्रतिमा अथवा (मूर्ति) आदि में सूर्य में केवल मेरी ही सेवा-पूजा करें। अथवा सावधानीपूर्वक शालग्राम शिला में मेरी उपासना करें। बुद्धिमान उपासक को चाहिये कि सर्वप्रथम देह शुद्धि के लिए प्रात:काल ही वैदिक तथा तान्त्रिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए शरीर में विधिवत् मृत्तिका (मिट्टी) आदि लगाकर स्नान करें और फिर नियमानुसार सन्ध्या आदि नित्यकर्म करें। श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा कि यदि मेरी मूर्ति शिलारूप हो तो स्नान कराना ही पर्याप्त है और यदि प्रतिमाकार हो तो केवल मार्जन ही करे। इस प्रकार की जाने वाली मेरी पूजा शीघ्र ही फलदायी होती है। यदि अग्नि में पूजा करनी हो तो आहुति द्वारा करें। भक्त के द्वारा श्रद्धापूर्वक निवेदन किया हुआ जल भी मेरी प्रसन्नता का कारण होता है फिर भक्ष्य भोज्य आदि पदार्थ और गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि पूजा-सामग्री एकत्रित कर मेरी पूजा करें। तदनन्तर श्रीराम ने पूजा करने की विधि बतायी। पहले क्रमश: कुशा, मृगचर्म और वस्त्र बिछाकर आसन बनाएँ तथा उस पर शुद्ध चित्त से इष्ट देव के सम्मुख बैठे। तत्पश्चात बहिर्मातका और अन्तर्मातृका न्यास करें तथा केशव, नारायण आदि चौबीस नामों का न्यास करके तत्त्वन्यास करे। इसके तश्चात् (विष्णुपंजरोक्त विधि से) मेरी मूर्ति में पंजरन्यास तथा मन्त्रन्यास करें।

मेरी प्रतिमा आदि में निरालस्य भाव से उसी प्रकार न्यास करना चाहिये तथा अपने सामने बायीं ओर कलश और दायी ओर पुष्प आदि सामग्री रखें। उसी तरह अर्घ्य पाद्य मधुपर्क और आचमन के लिये चार पात्र रखें। तत्पश्चात् अपने सूर्य के समान तेजस्वी हृदय कमल में जीवननाम्नी मेरी कला का ध्यान करे और हे शत्रुदमन अपने सम्पूर्ण शरीर को उससे व्याप्त देखें तथा प्रतिमा आदि का पूजन करते समय भी उन (प्रतिमा आदि) में उस जीवनकला का ही आवाहन करे।

पाद्यार्घ्याचिंमनीयाद्यै: स्नानवस्त्रविभूषणै:।
यावच्छवयोपचारैर्वं त्वर्चयेन्मामायया॥[3]

पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र आभूषण आदि से अथवा जो कुछ सामग्री मिल सकें उसी से निष्कपट होकर मेरी पूजा करे। यदि धनवान हो तो नित्यप्रति कर्पूर, कुंकुम, अगरु, चन्दन और अत्युत्तम सुगन्धित

2. अध्यात्मरामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 4.12
3. अध्यात्मरामायण किष्किन्धाकाण्ड सर्ग 4.27

पुष्पों से मंत्रोच्चारण करते हुए मेरी पूजा करे तथा नीराजन (पाँच बत्तियों की आरती) धूप, दीप और नाना प्रकार के नेवैद्यों द्वारा वेदोक्त दशावरण-पुष्प विधि से अर्चन करे। नित्य प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सब पदार्थ निवेदन करे, क्योंकि मैं परमात्मा मात्र श्रद्धा का भूखा हूँ। मंत्रविधि को जानने वाले उपासक पूजा के बाद विधिपूर्वक हवन करे। शास्त्रविधि के जाननेवाले बुद्धिमान पुरुष को उचित है कि अगस्त्य महर्षि की बतायी हुई विधि से कुण्ड बनाकर उसमें गुरु के दिए हुए मूलमन्त्र से अथवा पुरुषसूक्त के मन्त्रों से आहुति करे अथवा अग्निहोत्र की अग्नि में ही चरू होमाग्नि में तपाये हुए सुवर्ण की सी कान्तिवाले सर्वालंकार विभूषित भगवान् यज्ञ पुरुष के रूप में परमात्मा का सदा ध्यान करें और फिर मेरे पार्षदों के लिये बलि देकर होम समाप्त कर दे।

तदन्तर मौन धारण कर मेरा ध्यान और स्मरण करता हुआ जप करे। फिर प्रीतिपूर्वक ताम्बूल और मुखवास देकर मेरे लिये नृत्य-गान और स्तुतिपाठ आदि करावे और हृदय में मेरी मनोहर मूर्ति को धारण कर पृथ्वी पर लेटकर साष्टांग दण्डवत करें। मेरे दिए हुए भावनामय प्रसाद को यह भगवत्प्रसाद है ऐसी भावना से सिर पर रखे और भक्तिभाव से विभोर होकर मेरे चरणों को अपने मस्तक पर रखकर और हे प्रभो! इस प्रकार भयंकर संसार से मुझे बचाओ। ऐसा कहकर मुझे प्रणाम करे। उसके बाद बुद्धिमान उपासकों को चाहिये कि प्रतिमा में आवाहन की हुई जीवनकला को वह मुझ ही प्रवेश कर गयी है ऐसी भावना करते हुए विसर्जन करे। जो पुरुष उपर्युक्त प्रकार से मेरी विधिपूर्वक पूजा अर्चना करता है, वह मेरी कृपा से इंद्रलोक और परलोक दोनों जगह सिद्धि प्राप्त करता है।

मद्भक्तो यदि मामेवं पूजां चैव दिने दिने।
करोति मम सारूप्यं प्राप्नोत्येव न संशय: ॥[4]

यदि मेरा भक्त इस प्रकार नित्यप्रति पूजा करे तो वह मेरा सारूप्य प्राप्त कर लेता है इसमें सन्देह नहीं है। यह अति गोपनीय पूजाविधि परम पवित्र और सनातन है। इसे साक्षात मैंने ही अपने मुख से कहा है, जो पुरुष इसे निरन्तर पढ़ता या सुनता है, उसे नि:सन्देह संपूर्ण पूजा का फल निश्चित मिलता है। इस प्रकार अपने अनन्य भक्त शेषावतार लक्ष्मणजी के पूछने पर परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी ने अत्युत्तम क्रिया योग का उन्हें उपदेश दिया। फिर श्रीरामजी अपनी माया का अवलम्बन कर साधारण पुरुषों के समान दु:खित से दिखायी देने लगे। वह 'सीते हा सीते0 कहते हुए सारी रात यों ही बिता देते हैं तथा उन्हें किसी प्रकार नींद न आती है।

श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी को जो गुप्त क्रियायोग का वर्णन बताया है उसे यदि हम इस आपाधापी के जीवन में अनुकरण करें तो निश्चित रूप से श्रीरामजी की कृपा से मोक्ष का मार्ग मिल जायेगा। हमारा मानव जीवन में जन्म लेना सार्थक होकर श्रीराम के परमधाम में जाकर उनके दर्शन को प्राप्त कर सकेगा।

***

4. अध्यात्मरामायण किष्किन्धाकाण्ड सर्ग 4-39

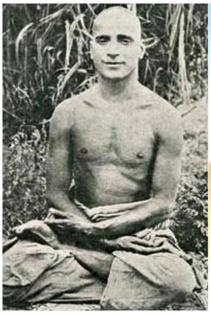

स्वामी रामतीर्थ

जिनका जन्म और महाप्रयाण दिवाली को हुआ

डॉ. राजेन्द्र राज
स्वतंत्र पत्रकार एवं पूर्व प्राचार्य, जनता कॉलेज, सूर्यगढ़ा पुरानी बाजार, सूर्यपुरा, पोस्ट और थाना- सूर्यगढ़ा, जि. लखीसराय (बिहार), ईमेल- rajendraraj8140@gmail.com

दीपावली अनेक परिप्रेक्ष्य में विशिष्ट है। लक्ष्मीपूजा, कालीपूजा, राजा बलि की पूजा, पितृपूजा आदि का यह अवसर है। इसी दिन श्रीराम चौदह वर्षों के वाद अयोध्या लौटे थे। जैन-परम्परा के अनुसार इसी दिन भगवान महावीर का निर्वाण पावापुरी में हुआ था। इसकी स्मृति में इस दिन नव-वर्षारम्भ माना गया है। गुजरात में भी सांस्कृतिक रूप से यह दिन वर्षारम्भ के रूप में मनाया जाता है। व्यवसाय-जगत् में भी दीपावली के दिन से नवीन वित्तीय वर्ष प्रारम्भ करने की परम्परा आज भी विद्यमान है। सिख परम्परा में गुरु हरिगोबिन्द सिंह इसी दिन अपने अंगरखा की कलगियों को पकड़ा कर 52 बंदियों को साथ लेकर जहाँगीर के कैद से छूटकर अमृतसर पहुँचे थे, जिस उपलक्ष्य में सिख भाई दीपावली मनाते हैं ।

दीपावली के इन्हीं माहात्म्यों की सूची में एक और जुड़ जाता है जब हम 19वीं शती के अन्त के एक सन्त स्वामी रामतीर्थ का नाम लेते हैं।

एक मान्यता के अनुसार दीपावली पर्व भगवान श्रीराम के 14 वर्षों के वनवास के बाद अयोध्या वापस लौटने पर मनाया जाता है। इस दिन पर अयोध्यावासियों ने लंका के अत्याचारी दानवों के राजा रावण का संहार किया था। वन में रहकर ही कई असुरों का वध कर के ऋषि-मुनियों को कष्ट से छुटकारा दिलाया था। स्वयं भगवान् श्री राम अपने भाई लक्ष्मण और अपनी जगत जननी पत्नी सीता के साथ वापस अयोध्या वापस हुए थे।

दीपों की शृंखला और अंधकार पर प्रकाश, अन्याय पर न्याय अज्ञानता पर ज्ञान, असत्य पर सत्य एवं धन वैभव, ऐश्वर्य, सुख-समृद्धि की देवी लक्ष्मी पूजा के दिवाली के दिन ही भारतवर्ष के शौर्य, बलिदान, क्रांति तथा त्याग की उर्वर भूमि -पंजाब में महान् संन्यासी रामतीर्थ का जन्म हुआ था।

वीरों की भूमि पंजाब में ही सिख धर्म के पहले गुरू नानकदेव का आविर्भाव भी पंजाब में हुआ था। पंजाब के शेर कहलाने वाले महाराजा रंजीत सिंह भी इसी मिट्टी के सपूत थे। पटनासिटी में सिखों के अंतिम दसवें गुरू गोविंद सिंह का जन्म हुआ था जो एक महान योद्धा,आध्यात्मिक चिंतक, कवि व खालसा पंथ के संस्थापक थे।

पंच प्यारे को कौन नहीं जानता? वे गुरु तेग बहादुर के पुत्र थे। लाला लाजपत राय, सरदार भगत सिंह की क्रांति को कौन भूल सकता है। स्वामी रामतीर्थ को पंजाब की मिट्टी से ही परम्परा में साहस,

बलिदान तथा त्याग की शिक्षा प्राप्त ह थी। दीन-दुखियों, अनाथों की शिक्षा के साथ सद्भाव, प्रेम का संदेश मिला था।

इस दिवाली के दिन ही उनका महाप्रयाण भी हुआ था। उस काल में जब इस भारतीय वेदांत दर्शन के ज्ञाता और संन्यासी का आविर्भाव 22 अक्टूबर 1873 को पंजाब के गुजरांवाला जिले के मुरारीवाला ग्राम में हुआ था, वह देश का ही भाग था। उनका महाप्रयाण भी इसी दिवाली के दिन हुआ।

स्वामी रामतीर्थ जिनके बचपन का नाम तीर्थ राम था और उनके पिता पंडित हीरानंद गोस्वामी एक धर्मपरायण व्यक्ति थे। बचपन में जो उन्होंने अभाव झेला था, उसका प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा था। बहुत कष्ट के साथ पढ़ाई की थी, क्योंकि पिता का देहांत बचपन में ही हो गया था।

उन्हें दुख और दरिद्रता का कष्ट मालूम था। कुशाग्र बुद्धि और मेधा के धनी स्वामी रामतीर्थ जब प्राध्यापक हो गए तो वे निर्धन विद्यार्थियों की मदद करते थे। उन्हें भूख और अभाव ग्रस्त जीवन का अनुभव था। मेधावी छात्र अपनी निर्धनता के कारण उच्च शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाते हैं। यह भी कम उदारता और दानशीलता की बात नहीं थी कि उन्हें उस समय महाविद्यालय से अल्प ही वेतन मिलता था। अपने पिता के मित्र धन्ना भगत धन्ना के साहचर्य में उन्होंने पहलवानी भी सीखी थी और अध्यात्म विद्या की जानकारी मिली थी। उस समय की एण्ट्रेंस की परीक्षा में वे राज्य में सर्वप्रथम आए थे और आगे की कालेजी शिक्षा प्राप्त की थी। वैसे पिताजी उनके कालेज की उच्च शिक्षा के विरोध में थे, लेकिन उन्होंने मितव्ययता से कम खर्च करना सीख लिया था। सादगी भरा जीवन अपनाया।

यह उनके चरित्र की विशेषता थी कि युवा हो कर भी सांसारिक प्रलोभनों में नहीं पड़े। जीवन इतना कष्टप्रद था कि पहनने को कोट नहीं, दो शाम के बदले एक ही शाम भोजन करते एवं पाँवों में जूते नहीं। तपस्या भरा जीवन था। लाहौर कॉलेज के अंग्रेज प्रिंसपल उनकी प्रतिभा के प्रशंसक बन गए। उन्होंने अब के आईएएस और उस समय की आईसीएस की परीक्षा में नाम भेजने की बात की। उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि वे उच्च पद पर आसीन हो कर धनवान नहीं बनना चाहते। अपनी प्रतिभा का उपयोग मानव की सेवा करने में लगाएँगे। जीवन की हर एक सांस ईश्वर और मानव की सेवा में लगा रहेगा।

यही कारण था कि उन्होंने उसी कालेज में प्राध्यापक के पद पर कम वेतन में भी कार्य करना आरंभ किया। इस वेतन के पैसे को भी दीन-दुखियों तथा निर्धन मेधावी विद्यार्थियों के बीच दान दे देते थे। गत 1897 में लाहौर में कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने बड़े नेताओं के भाषण सुन की यह अनुभव किया था कि भाषणों से देश का सच्चा हित नहीं हो सकता।

गणित विषय के विशेषज्ञ प्राध्यापक स्वामी रामतीर्थ के जीवन की दिशा भक्ति की ओर मुड़ गई थी। गीता के अध्ययन करने से वे भगवान् श्रीकृष्ण के परम भक्त बन गए। द्वारका मठ के माधव तीर्थ की प्रेरणा से उन्होंने वेदांत की ओर अपना ध्यान किया। यह तो अद्भुत संयोग था कि विश्व धर्म-सभा में भारतीय धर्म व अध्यात्म की डंका बजाने वाले जाज्वल्यमान सूर्य जैसे प्रखर वेदांतदर्शी विवेकानंद को लाहौर में पहली बार देख कर श्रद्धा से भर गए तथा उनमें सन्यासी बनने की प्रेरणा जगी। उन्होंने स्वामी विवेकानंद के गोलोक प्रस्थान करने के पूर्व संन्यास ग्रहण कर लिया था। प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दे दिया और सन्यासी जीवन के मार्ग पर चल पड़े। हिमालय की ओर प्रस्थान किया। पत्नी व बच्चों का परित्याग कर दिया। वेदांत को संपूर्ण दुनिया में और भी अधिक प्रचार-प्रसार करने की दिशा में अपने शिष्य स्वामी नारायण के साथ जापान में भी विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लिया। टिहरी के नरेश ने उनकी सहायता की थी।

शेष अंश पृ. 51 पर

श्रीगणेशजी के बारह नाम

डॉ. शारदा नरेन्द्र मेहता
सीनि. एमआईजी-103, व्यास नगर,
ऋषिनगर विस्तार, उज्जैन (म.प्र.)
Email : drnarendrakmehta@gmail.com
पिनकोड- 456 010

आगम की उपासना पद्धति में प्राचीन काल में से पाँच सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है, जिनके देवता हैं- सूर्य, गणेश, अग्नि, विष्णु, दुर्गा तथा शिव। इनमें से वर्तमान में अग्नि से सम्बद्ध शाखा लुप्त हो चुकी है, गणेश-शाखा को शैव शाखा में मिला दिया गया है। सूर्य से सम्बद्ध शाखा के कुछ ग्रन्थ साम्ब-पुराण, त्रिच-भास्कर आदि उपलब्ध है। मित्रमिश्र ने भी वीरमित्रोदय में कुछ तथ्यों का संकलन किया है। शेष तीन शाखाएँ- शैव, वैष्णव एवं शाक्त ये पल्लवित-पुष्पित हैं।

गणेश-उपासना की शाखा के कुछ अंश छिट-फुट उपलब्ध होते हैं, इन्हींमें से एक गणेश के बारह नामों का स्तोत्र है। इसकी व्याख्या आगम की गाणपत्य-शाखा को पृथक् सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। लेखिका ने लोक अवधारणा तथा शास्त्रीय अवधारणा की दृष्टि से इन 12 नामों की व्याख्या की है।

अनादिकाल से गणेशजी का पूजन वैदिक मंत्रों के साथ होता आया है। वैदिक काल में भी गजानन गणेश प्रासंगिक रहे हैं। हमारी सनातन परम्परा में श्रीगणेशजी के अग्र पूजन के बिना किसी भी शुभ कार्य को प्रारंभ नहीं किया जाता है। हमारी यह धारणा रहती है सभी कार्य बाधा रहित और मंगलमय रूप से सम्पन्न हों। शुभ कार्य के प्रारंभ में गणेशजी के बारह नामों का संकीर्तन किया जाता है-

सुमुखश्चैक दन्तश्च कपिलो गजकर्णक:।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायक:॥
धूर्मकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजानन:।
द्वादशैतानि नामानि य: पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥

अर्थात् भाव यह है कि व्यक्ति विद्यारम्भ के समय, विवाह जैसे शुभ कार्य के समय, नव निर्मित घर में प्रवेश के समय, यात्रा के समय, संग्राम के अवसर पर, किसी विपत्ति के समय श्रीगणेशजी के बारह नामों का स्मरण करता है तो उसका कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो जाता है। ये बारह नाम हैं-

1. सुमुख, 2. एकदन्त, 3. कपिल, 4. गजकर्ण, 5. लम्बोदर, 6. विकट, 7. विघ्ननाशक, 8. विनायक, 9. धूम्रकेतु, 10. गणाध्यक्ष, 11. भालचन्द्र, 12. गजानन।

इन प्रत्येक नामों के साथ एक इतिहास एक पौराणिक कथा अन्तर्निहित है। हम यहाँ प्रत्येक नाम का विश्लेषण करेंगे-

सुमुख

सुमुख का शाब्दिक अर्थ है सुन्दर मुख। सुन्दर मुख सामान्य रूप से गौरा रंग, बड़े-बड़े आकर्षक विशाल नेत्र तथा तीखी नाक वाले व्यक्ति की छबि हमारे सम्मुख प्रकट होती है। गणेशजी के नेत्र छोटे हैं। रंग भी गोरा नहीं है। उनका मुख सुमुख इसलिए है कि उनके दर्शन सभी के लिए शुभ है। दर्शन मात्र से ही भक्तों के संकट का हरण हो जाता है।

एकदन्त

एक बार परशुरामजी शंकरजी से मिलने गए। द्वार पर खड़े गणेशजी ने उन्हें अन्दर जाने से रोक दिया। दोनों में वाक्युद्ध होने लगा। परशुरामजी क्रोधित तो हुए, परन्तु बाल्यावस्था देखकर उन पर प्रहार करना नहीं चाहते थे। परशुरामजी गणेशजी के वाक् प्रहार असहनीय होने से उन्होंने गणेशजी पर प्रहार कर दिया। प्रहार भुजा पर करना था वह दाँत पर लग गया। प्रहार से दाँत टूट गया। टूटा हुआ दाँत परशुरामजी को नष्ट करने के लिए चल पड़ा। शिव गण उसके पीछे-पीछे गए और उसे रोक लिया। सम्पूर्ण पृथ्वी काँप उठी। चारों ओर भय व्याप्त हो गया। सभी ओर हाहाकार मच गया। विद्वानों का मत है कि जब गणेशजी के दो दाँत थे तो वे द्वेत भाव के पोषक थे। जब उनका एक दाँत टूट गया तो वे इस बात का द्योतक है कि वे अद्वेत के प्रतीक बन गए। एक दाँत इस बात का प्रतीक है कि जीवन में सफलता उसी व्यक्ति को प्राप्त होती है जिसका लक्ष्य एक ही होता है। इससे भक्तों को एकता की शिक्षा प्राप्त होती है। हमेशा एक लक्ष्य रखो।

कपिल

जिस प्रकार कपिला गौ के दूध, दही, घृत, मक्खन मानव को पुष्ट बनाते हैं। उसी प्रकार कपिल (भूरा) रंग के गणेशजी के पूजन से भक्त पुष्ट बनाते हैं। कपिल रंग के गणेशजी की यही विशेषता है।

गजकर्ण

गजकर्ण का अर्थ हाथी के समान कर्ण वाले। गज के समान कान इस बात का प्रतीक हैं कि सभी की बात श्रवण करें। बातों के सार को ग्रहण करें। व्यर्थ की बातों को महत्त्व न दें। उनसे अपना अहित न करें।

लम्बोदर

लम्बोदर का अर्थ है- विशाल पेट वाला। बड़े पेट से भक्तों को यह शिक्षा मिलती है कि सभी की बातों को सुनकर पेट में समाहित कर लेना चाहिए। निरर्थक बातों को चाहे जहाँ उगल कर वातावरण को दूषित बना देता है। कई बातों को पेट में पचा लेना चाहिए। गणेशजी ने डमरू की ध्वनि से वेदों का ज्ञान प्राप्त किया। माता पार्वती के नुपूर की ध्वनि से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। ताण्डव नृत्य से नृत्य विद्या प्राप्त की। लम्बोदर होने से इन सभी कलाओं को उन्होंने उदरस्थ कर लिया।

विकट

विकट शब्द का अर्थ है- भयंकर। गणेशजी का आधा शरीर नर का तथा ऊपर का अंग हाथी का है। उनका ऐसा स्वरूप विकट है। यह स्वरूप इस बात का प्रतीक है कि गणेशजी इस बात का सन्देश देते हैं कि व्यक्ति को उन्नति के मार्ग में आने वाली विकट से विकट परिस्थितियों में धैर्य से काम लेना चाहिए। बाहरी आकृति चाहे विकट हो, किन्तु अन्त:करण शुद्ध और हितकारी होना चाहिए।

विघ्ननाश

विघ्ननाश का अर्थ है विघ्न (संकट) का नाश करने वाले। गणेशजी को किसी भी शुभ कार्य में कोई बाधा (विघ्न) न हो, सम्पूर्ण कार्य सानन्द सम्पन्न हो जाए, इसलिए सर्वप्रथम (विघ्नों का नाश करने वाले) श्रीगणेशजी का विधिवत पूजन किया जाता है। गणपति अथर्वशीर्ष में लिखा है-

विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः।

अर्थात् भाव यह है कि विघ्नों को नष्ट करने वाले, शिव पुत्र वरदायी मूर्ति रूप में प्रकटित श्रीगणेशजी को नमस्कार करते हैं।

विनायक

विनायक हमारे शुभ कार्यों के नायक हैं। उनके नायकत्व में ही हमारे शुभ कार्यों का प्रारंभ होता है। स्वयं शंकरजी ने इन्हें अपने सभी गणों में मुख्य कहा है। ये उन सभी के नायक हैं।

धूम्रकेतु

धूम का अर्थ है धुआँ और धूम्र का अर्थ है धुँए के रंग वाला अर्थात् धूसर रंग तथा केतु अर्थात् ध्वजा या पताका, धूसर रंग की ध्वजा। ऐसी धारणा है कि गणेशजी धूम धूसर अर्थात् अस्पष्ट कल्पनाओं को साकार करने वाले हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि मानव के आध्यात्मिक विकास में आने वाले विघ्नों को भस्मसात् कर अपने भक्तों को प्रकाश का मार्ग दर्शाने वाले गणेशजी ही हैं।

गणाध्यक्ष

गणों के अध्यक्ष अर्थात् गणों के स्वामी, गणों में प्रमुख। शंकरजी ने स्वयं अपने पुत्र गणेशजी को गणाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित किया है। बाल्यावस्था में उनका मस्तक काट दिया था। अश्विनी कुमारों ने गणेशजी को हाथी का सिर लगा दिया गया था तब सभी शिवगण प्रसन्नता से नाचने लगे और उन सभी ने जय जयकार करके गजवंदन का अभिनंदन किया। उन सभी ने शंकरजी द्वारा प्रदत्त गणाध्यक्ष के पद को स्वीकार कर हर्ष व्यक्त किया।

भालचन्द्र

शंकरजी के मस्तक पर चन्द्रमा सुशोभित है। गणेशजी के सिर पर भी चन्द्रमा विराजमान हैं। चन्द्रमा शीतलता तथा शान्ति का प्रतीक है। चन्द्रमा की कान्ति सभी को आकर्षित करती है। चन्द्रमा के दर्शन मात्र से मन में शान्त भाव प्रादुर्भूत होते हैं, शीतलता की अनुभूति होती है। व्यक्ति अपने परिवार में, समाज में तथा अपने कार्यालय में शान्त मस्तिष्क रख कर अपने दायित्वों को निर्विघ्न कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है और सफलता प्राप्त कर सकता है। श्रीव्यास द्वारा रचित नवग्रह स्तोत्र में कहा है-

दधिशंखतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम्।
नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम्।

गजानन

गजानन का कंठ से ऊपर का भाग हाथी के समान है। शेष भाग की आकृति नर के समान है। गजानन के कान सूप के समान बड़े-बड़े हैं। बड़े कान इस बात का संकेत देते हैं कि हमेशा किसी की बात सम्पूर्ण सुनना चाहिए। अधूरी बात श्रवण करने से गलत धारणा उत्पन्न होती है। मनमुटाव होता है। सम्पूर्ण बात ध्यान देकर सुनने से कार्य का सम्पादन भली प्रकार से, सही तरीके से होता है। अधूरी बात सुनकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करनी चाहिए। गणेशजी की आँखें छोटी हैं, परन्तु वे अपने भक्त को तीक्ष्ण तथा दूर दृष्टि से देखकर उनकी समस्या का समाधान करते हैं। गणेशजी की लम्बी नाक (सूँड) प्रतिष्ठा की द्योतक है। हर व्यक्ति के जीवन में नाक (इज्जत) की प्रतिष्ठा बनाए रखने की समस्या रहती है और इसे बचाने के लिए वह भरसक प्रयत्न करे यही सन्देश गणेशजी की सूँड देती है।

अनादिकाल से गणेशजी का पूजन वैदिक मंत्रों के साथ होता आया है। वैदिक काल में भी गणेशजी प्रासंगिक रहे हैं। श्रीगणपति अथर्वशीर्ष का पाठ वैदिक काल से होता आया है। इस कथन से विद्वत्जन भी सहमत हैं। भारत में सनातन धर्मावलम्बी गणेशजी का पूजन सर्वदा करते हैं। प्रत्येक कार्य में गणेश पूजन का

महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। किसी भी भगवान का मन्दिर हो वहाँ गणेशजी की मूर्ति अवश्य स्थापित रहती है। वेदव्यासजी जब महाभारत की रचना करने लगे तो उन्हें ऐसे विद्वान की आवश्यकता हुई जो उनके बोलने पर लिखता जाएँ। उन्हें इस कार्य के लिए श्रीगणेशजी ही सर्वोत्तम लगे। श्रीगणेशजी आए और उन्होंने यह शर्त रखी कि आप अविरलगति से बोलते जाना और मैं लगातार बिना रुके लिखता जाऊँगा। यह थी श्रीगणेशजी की बुद्धिमत्ता की विशेषता।

विवाह, यज्ञोपवीत, गृहप्रवेश, जन्मदिवस या कोई भी पारिवारिक शुभकार्य हो उनके निमंत्रण पत्र वितरण करने में सर्वप्रथम गणेशजी को निमंत्रित किया जाता है। गणेशजी के मन्दिर में पत्रिका सादर समर्पित की जाती है। विवाह के पश्चात वर-वधू को गणेश मन्दिर के दर्शन के लिए ले जाते हैं।

हमारी संस्कृति में जब वसंत पंचमी पर नन्हें बालक का विद्यारंभ किया जाता है, तो सर्वप्रथम उसके हाथ से ‘ग गणेशजी अक्षर ही लिखवाया जाता है। मान्यता है कि बालक गणेशजी के समान बुद्धिमान बनें। गणेशजी को मोदक विशेष प्रिय है। मोदक विशेषकर गुड़ के मोदक का नैवेद्य उन्हें लगाया जाता है। मोदक एकता का अखिल ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। बूँदी का नैवेद्य नहीं लगता है क्योंकि वह बिखराव, विखंडन का प्रतीक है। बूँदी के लड्डू का कुछ लोग नैवेद्य में प्रयोग करते हैं। दुर्वा भी गणेशजी को प्रिय है। दुर्वा में भी तीन पत्ती वाली दुर्वा ही चढ़ाई जाती है। गणेशजी के भक्त सावधानीपूर्वक पूजन विधि सम्पन्न करते हैं।

***

“स्वामी रामतीर्थ” का शेष अंश पृ. 47 से

जापान में ही एक घटना के विषय में चर्चा की जाती है। वे फल खा कर रहते थे और जापानी युवक ने उनसे अच्छा फल नहीं मिलने पर अच्छा फल ला कर दिया था। वह युवक अपने देश की निन्दा नहीं सुनना पसंद करता था। स्वामीजी ने जापान के लोगों से राष्ट्र के स्वाभिमान की शिक्षा लेने को कहते थे। टोकियो, अमरिका और सैन फ्रांसिस्को की यात्राओं के बाद अनुयायियों की संख्या बढ़ गई थी।वेदांत शिक्षा के लिए समर्पित संस्था हर्मेटिक ब्रदरहुड की स्थापना की थी। विदेशी यात्राओं से लौटने के बाद संपूर्ण देश में वेदांत का प्रचार किया। इसके बाद हिमालय क्षेत्र में आश्रम में रहने लगे। यह भी महज संयोग है कि उन्होंने भी विवेकानंद के समान अल्प आयु में 33 वर्ष की अवस्था में निर्मल तथा पवित्र मां गंगे की धारा में शरीर का परित्याग कर दिया।वे भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान के साथ विज्ञान और प्राद्योगिकी तथा जन साधारण की शिक्षा पर बल दिया। जाति प्रथा और धार्मिक अंधविशेषताओं का विरोध किया। उन्होंने हिंदुत्व को एक धर्म विशेष की विचारधारा ही नहीं बल्कि संपूर्ण जीवन-दर्शन कहा है।

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा ने अपनी पुस्तक ‘आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन’ में उनके द्वारा रचित पुस्तको की चर्चा की है। लेख, व्याख्यान, उपदेश आदि के संग्रह के अतिरिक्त ‘सफलता की कुंजी’,’हमारा राष्ट्रीय धर्म’. ‘मानवता और विश्व-प्रेम’, ‘विश्वधर्म’ एवं ‘भारत का भविष्य’ आदि उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। वे हिन्दी के समर्थक थे और देश के अवश्य स्वतंत्र होने की भविष्यवाणी की थी। उन्होंने कहा था कि आत्मज्ञान से ही शाश्वत शांति प्राप्त हो सकती है और अपने को पहचानना चाहिए, क्योंकि हम स्वयं ईश्वर हैं।

***

सोमरस : मिथक एवं वास्तविकता

डॉ. मयंक मुरारी

वरीय उप महाप्रबन्धक, उषा मार्टिन कंपनी। विगत 25 सालों में 400 से अधिक आलेख और 12 पुस्तकें प्रकाशित। पता : तेलपा निवास, नजदीक एच/116 ए0 जी0 क्वार्टर के पास, हिनू कॉलोनी, पोस्ट- डोरंडा, रांची, झारखंड- 834002

सोमलता तथा सुरापान को लेकर अकसर विवाद होते रहते हैं उन्हें मादक पदार्थ मानकर वैदिक काल में उसके प्रचलन की व्याख्या की जाती है। लेखक की मान्यता है कि सोमलता तथा सोमरस में मादकता नहीं औषधीय गुण होते थे। आधुनिक विज्ञान तथा आयुर्वेद की दृष्टि से सोमरस का पता लगाया जा रहा है तथा उसके वैदिक उद्धरणों के साथ समन्वय स्थापित कर उसकी पहचान की जा रही है। गुरु नानक विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में शोधकर्ताओं ने बहुत कार्य किया है। सोमरस पर आधुनिक शोध की क्या दिशा है तथा वह कहाँतक पहुँची है उसे इस आलेख में लिखा गया है।

भारतीय जनमानस को समुद्र मंथन से प्राप्त अमृत कलश का आख्यान हजार सालों से रोमांचित करता रहा है। धन्वन्तरि अपने हाथ में समुद्र मंथन के समय अमृतकलश लेकर प्रकट होते हैं, तो दूसरे आख्यान में वैदिक देव अश्विनी कुमार अपने साथ मधुकलश के साथ समाज के समक्ष आते हैं। मधु और अमृत का यह शाश्वत आख्यान समाज और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा बन गया है, लेकिन इस मधु, सोम, अमृत और संजीवनी के रहस्य को जानने के लिए मन-मस्तिष्क के साथ परम्परा एवं पुराणों का अनवरत मंथन चलता रहा है। ऋग्वेद का एक मंडल ही सोम को समर्पित है, और इस मंडल की ऋचाओं में इंद्र को केंद्रित करके सोमरस को अर्पित किया गया है। सोम और इंद्र शब्द एवं देवमंडल के साथ ऋग्वेद के विभिन्न अध्यायों में छिपा वह रहस्य है, जिसने उसके सुनहले संसार को बनाया है।

भारतीय पुराणों में से एक विष्णु पुराण में समुद्र मंथन का उल्लेख मिलता है, जिसमें अमृत का उल्लेख मिलता है। इसमें वर्णन है कि महर्षि दुर्वासा के श्राप के कारण स्वर्गलोक श्रीहीन हो गया। इससे वहाँ पर ऐश्वर्य, धन और वैभव की कमी हो गयी। तत्पश्चात सभी देवता भगवान विष्णु के पास गये तो उन्होंने कहा कि आप सभी देव और असुर लोग मिलकर समुद्र मंथन करने का उपाय करे। समुद्र मंथन से रत्नों की प्राप्ति होगी, इससे जीवन में ऐश्वर्य और समृद्धि प्राप्त होगी। यह बात देवताओं के राजा बलि को बतायी गयी

तो वह भी राजी हो गये। इसके बाद मंदराचल पर्वत की सहायता एवं वासुकि नाग की नेति से समुद्र को मथा गया। तत्पश्चात् 14 रत्नों की प्राप्ति हुईं। इनमें सबसे मुख्य रत्न अमृत यानी सोमरस की बात होती है।

अमृत का शाब्दिक अर्थ जीवन की अमरता से जुड़ा है। व्यक्ति अमृत पान करे, तो उसका जीवन अनंत काल का हो जाए। वैदिक काल में गूढ़ अर्थ में बातों को कहने वाले ऋषियों ने वैदिक ग्रंथों में इस अमृत यानी सोम की प्राप्ति का उपाय भी बताया है। निश्चित ही एक ऐसे पेय पदार्थ या रसायन था जिसको पीने से व्यक्ति का दीर्घायु हो जाता था। इसको पीने से व्यक्ति हजारों वर्ष तक जीने की क्षमता हासिल कर लेता होगा। ऐसे दीर्घायु ऋषि रामायण और महाभारत काल में मिलने का उल्लेख है।

समुद्र मंथन से जो अमृत का कलश निकला था। उस अमृत के नाम पर ही चरणामृत और पंचामृत का प्रचलन हुआ। सोम, अमृत और संजीवनी शब्द सबसे पहला उल्लेख ऋग्वेद में आया है, जहाँ यह सोम के विभिन्न पर्यायों में से एक बताया गया है।

सोमरस को ही अमृत माना गया है, ऐसा विद्वानों का मत रहा है। सोम एक रस है या द्रव्य, यह कोई नहीं जानता। कुछ विद्वान सोम को औषधि मानते है, तो कुछ विद्वान इसे खाद्य पदार्थ मानते हैं, जिनके खाने से शक्ति, ऊर्जा और स्फूर्ति मिलती थी। सुश्रुत के किताब में लिखा है कि इसका सेवन करने से कायाकल्प हो जाता है, वृद्ध पुनः युवा हो जाता है। वेद में एक और सोम की भी चर्चा है जिसके संबन्ध में लिखा है कि ब्राह्मणों को जिस सोम का ज्ञान है उसे कोई नहीं पीता। ब्राह्मण के सोम की महिमा इन शब्दों में है। देखो हमने सोमपान किया और हम अमृत हो गए या जी उठे। वैदिक कालीन सोमरस के पूर्व अमृत के बारे में ऋषियों के दर्शन क्या थे? उनका मानना था कि हमारे अंदर और बाहर अपमिरमित दिव्य अमृतत्व का समुद्र भरा हुआ है। यह जरूरी है कि हम अपनने को अल्पज्ञ, जड़ता और मृत्यु से नहीं जोड़े, बल्कि अमृत पुत्र की तरह चिंतन करे। विराट शक्तियों का निवास हमारे अंदर है। उस अनंत शक्तियों को ज्ञान सूत्र से ही मंथन कर अमरता को प्राप्त किया जा सकता है। यह अमृत कलश भौतिक नहीं, बल्कि आत्मिक है, जिसका वरण संकल्प और ज्ञानमय मंथन से संभव है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (3.10.8) में अमृत कलश का आधार क्या है? उसपर लंबा व्याख्यान है। इसमें कहा गया है कि विराट् संसार में जो अग्नि वायु आदि देव हैं, उन्हीं का प्रतिनिधि वाक्-प्राण आदि हमारे शरीर में हैं। उन देवों का अधिष्ठान हमारे अंदर हृदय में वास करता है। चैतन्य अमृत यानी अविनाशी ईश्वर ही ब्रह्म है। हृदय, आयु, प्राण, मन सब मुझे पुनः प्राप्त हों, उनकी खोयी हुई शक्ति को अमृत स्रोत के साथ मिलकर मैं प्राप्त करूं। अमृत सूर्य की किरणों में वर्तमान मेरा वैश्वनार अंतरात्मा अमृतत्व का रक्षक हो। मैं मृत्यु से हटकर अमरपान करना चाहता हूं तथा इन शिव संकल्पों के आविष्ट एवं पारायण से अहरह अमृत को प्राप्त करता हूं।

वैदिक ग्रंथों में इस शरीर को ही ब्रह्मपुरी कहा गया है। इस शरीर में बसने के कारण ही ब्रह्म की संज्ञा पुरुष कही जाती है। पुरि शेते इति पुरुषः यह निरुक्ति भी ब्राह्मण ग्रंथों में दी गयी है। यह समस्त विश्व या जगत ही उस ब्रह्म की रचना है। विश्व क्षर ब्रह्म है और पुरुष अक्षर ब्रह्म है।[1] यजुर्वेद (31.2) उसे पुरुष के दो भाग हैं - अमृत भाग और अन्न भाग। अमृतभाग अक्षर कहलाता है। और अन्न भाग नश्वर है। इस प्रकार जो भाग क्षय होनेवाला है, उसे पुर और इस पुरी में

1 उरु-ज्योति, वासुदेव शरण अग्रवाल: प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ- 48।

“प्रजापति के दो तमोरूप अन्न है। एक सोम और दूसरा सुरा। सत्य, श्री, ज्योति का नाम सोम है। पाप और तम का नाम सुरा है। अपने शरीर में हम देखते है कि सोम और सुरा दोनों है।”

बसनेवाला अक्षर ही पुरुष है। यह पुरी चारों ओर से अमृत से ढकी हुई है और इसका आधार भी अमृत है। अमृत से परिपूर्ण इस ब्रह्मपुरी को ब्रह्मज्ञानी लोग जानते हैं। आत्मज्ञानी महात्मा लोग उसे ब्रह्मवेत्ता कहते हैं। वे इस शरीररूपी क्षेत्र को और इसके भीतर रहनेवाले क्षेत्रज्ञ पुरुष को समाधि के द्वारा अनुभव में लाते हैं। कठ उपनिषद में इसे एकादश दरवाजें वाला पुरी कहा गया है जो शोक को प्राप्त नहीं होता है, तथा शरीर को छूटने पर मुक्त हो जाता है। यही अमृत पुरुष है। ऐसे अमृत पुरुष के संदेश को जिज्ञासु जन सुनते रहते हैं। जो महात्मा इस ब्रह्मपुरी में रस से तृप्त होकर बसते हैं, उन्हीं को शांति और आनंद मिलता है। उसको हमारे वैदिक ग्रंथों ने रस रूप बताया है।[2]

भारतीय वैदिक ग्रंथों में कहा गया कि ऐसे रस स्वरूप ईश्वर का प्राप्त करना ही सबसे उत्कृष्ट मधु है। उपनिषद में इसे मधुविद्या कहा गया है, जिस मधु या सोम का स्वाद कर लेने पर मनुष्य निश्चित ही अकाम की स्थिति में पहुंच जाता है, जहाँ मृत्यु, अंधकार और जड़ता का कोई भय नहीं रहता है।

समुद्र मंथन से जो रत्न प्राप्त हुए उसका संबन्ध भी अध्यात्म पक्ष में मनुष्य के शरीर के आंतरिक तत्त्वों से ही है। सोम या चंद्र मस्तिष्कगत सोमरस है, जो अमृत का स्रवण करता है। आयु, प्राण, चेतना, ज्योति, देवत्व, शांति आदि सात्विक तत्त्वों की संज्ञा ही अमृत है। ब्राह्मण ग्रंथों में इन परिभाषाओं को स्पष्ट स्वीकार करके अमृत के अभिप्राय को बताया गया है। मनुष्य में प्राणशक्ति का उद्रेक ही अमृत बल है। यह प्राण रेत की शुद्धता पर निर्भर है। रेत या वीर्य जल तत्त्व पर आश्रित है।

ऐतरेय उपनिषद में कहा है कि जलों ने रेत बनाकर इस शरीर में निवास किया—

आपः रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।

रेत एक प्रकार की शक्ति है जिसका द्वैत भाव है। एक दैवी और दूसरा आसुरी। निरुक्त में जल को अमृत और विष दोनों कहा गया है। जल से उत्पन्न सात्विक शक्ति अमृत है और उसी का तामसिक शक्ति विष हो जाता है। पुरुषरूपी समुद्र मंथन में रेत या जल के मंथन से पुरुष के शरीर में ही विष और अमृत दोनों भिन्न तत्त्व उत्पन्न होते हैं। वेद के प्राचीन भाषा में ही इसको सोम और सुरा कहा गया है। रेत की सात्त्विक शक्ति सोम है और तामसी मादक शक्ति का नाम सुरा है। कहा गया है कि

अथ सप्तदश सोमग्रहान्गृह्णाति। सप्तदश सुराग्रहान्प्रजापतेर्वा एते अन्धसी यत्सोमश्च सुरा च ततः सत्यं श्रीर्ज्योतिः सोमोऽनृतं पाप्मा तमः सुरैते एवैतदुभे अन्धसी उज्जयति सर्वं वा एष इदमुज्जयति यो वाजपेयेन यजते प्रजापतिं ह्युज्जयति सर्वमु ह्येवेदं प्रजापतिः — शतपथ ब्राह्मण : 5.1.2.10

2 अर्थववेद 10.2.29.30 /10.8.44

अर्थात् प्रजापति के दो तमोरूप अन्न है। एक सोम और दूसरा सुरा। सत्य, श्री, ज्योति का नाम सोम है। पाप और तम का नाम सुरा है। अपने शरीर में हम देखते है कि सोम और सुरा दोनों है। अन्न जब पेट में पहुँचता है, वह जब बल बनाता है, शारीरिक शक्ति सुरा है। जब वह बल मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति बनाता है तो वह सोम हो जाता है॥ इसलिए चंद्रमा को सोम और मन से उत्पन्न बताया गया।[3]

वैदिक काल में जो महत्त्व और स्थान अश्विनी को प्राप्त था वही पौराणिक काल में धन्वन्तरि को प्राप्त हुआ। जहाँ अश्विनी के हाथ में मधुकलश था वहाँ धन्वन्तरि को अमृत कलश मिला, क्योंकि विष्णु संसार की रक्षा करते हैं अतः रोगों से रक्षा करने वाले धन्वन्तरि को विष्णु का अंश माना गया। सोमरस की कथा वैदिक कालीन ऋग्वेद का नौवां मंडल सोम को सर्मर्पित है। ऋग्वेद में सोम का उल्लेख विशेष तौर पर मिलता है, जो जल प्लावन के बाद की घटना है। यह वैवस्वत मनु के बाद सूर्य एवं चन्द्रवंशी राजाओं के कालखंड में ऋग्वेद के अधिकतर ऋचाओं की रचना हुईं। इस कारण वेद में सोम का उल्लेख है, उसी सोम को रामायण एवं महाभारत काल में संजीवनी के रूप में कहा गया।

पुराण में धन्वंतरि के हाथ में जिस अमृत कलश की घटना का उल्लेख है, वह जल प्लावन के पूर्व भारतीय सभ्यता का पौराणिक इतिहास है, जब देश के सभी समाज के लोगों ने सभ्यता के विकास और संस्कृति के समृद्धि के लिए महान अभियान चलाया था। इसका नेतृत्व चूँकि विष्णु (अदिति एवं कश्यप के पुत्र विवस्वान् जिनको विष्णु भी कहा जाता है। इनके पुत्र वैवस्वत मनु से इक्ष्वाकु यानी सूर्य वंश और पुत्री इड़ा के पति चंद्र से चंद्रवंश की परम्परा चली।) ने किया, इसलिए उनका सबसे ज्यादा नाम है। यहाँ धन्वन्तरि एक ऋषि के साथ भगवान विष्णु के अवतार के रूप में है। विक्रमादित्य के दरबार में भी नवरत्नों का उल्लेख मिलता है, जहाँ धन्वन्तरि का वर्णन आता है, जो महान चिकित्सक थे, और परवर्ती काल में जिनकी परम्परा में सुश्रुत और चरक जैसे प्रसिद्ध चिकित्सक हुए।

सोमरस यानी अमृत का भारतीय सभ्यता में विशेष महत्त्व है। समुद्र मंथन से प्राप्त अमृत की कथा काफी रोचक है। देवताओं और दैत्यों के बीच अमृत बंटवारे को लेकर जब झगड़ा हो रहा था तथा देवराज इंद्र के संकेत पर उनका पुत्र जयंत जब अमृत कुंभ लेकर भागने की चेष्टा कर रहा था, तब कुछ दानवों ने उसका पीछा किया।

अमृत-कुंभ के लिए स्वर्ग में 12 दिन तक संघर्ष चलता रहा और उस कुंभ से चार स्थानों पर अमृत की कुछ बूंदें गिर गईं। यह स्थान पृथ्वी पर हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक थे। यहीं पर प्रत्येक 12 वर्ष में कुंभ का आयोजन होता है। बाद में भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण करके अमृत बांटा था।

आचार्य कुबेर नाथ राय का कहना है कि इस अमृत कलश की परिकल्पना का बाद में विकास हुआ और समुद्र प्लावन के पूर्व के सुर और असुर समाज के लोगों ने यह विचार भी किया कि समुद्र मंथन से केवल अमृत ही नहीं बल्कि कई और तत्त्व एवं चीजें निकली थीं। विचार विवेचना से यह बात भी आयी होगी कि पाताल लोक न केवल अमृत कुंभ का लोक है, बल्कि वहाँ भोग और बिलास का चरम स्थान है। दार्शनिक चिन्तन में यह बात भी आयी कि उस पाताल लोक में रत्नों का भंडार है। यही कारण है कि भारतीय जीवन की कथाओं में नागलोक के देवता सदैव अमृतपान

3 डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल: कला और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ- 163-164।

और सर पर रत्न धारण किये बताया गया है।

ऋग्वेद के एक मंडल जिसको समर्पित है, जिस विषय का सुनहरा एवं रहस्यमय संसार है। जिसने हजारों सालों से भारतीय जनमानस को आकर्षित किया है। आखिर वह सोम क्या था? इसपर आने के पूर्व ब्राह्मण ग्रंथ में सोमरस से संबन्धित जीर्ण-शीर्ण च्यवन ऋषि और अश्विनी कुमार का एक संवाद मिलता है, जिसमें सोम का उल्लेख है। चूंकि अश्विनी कुमार को सोम की जानकारी नहीं थी और वे देवताओं के वैद्य थे। अतएव उन्होंने प्राणविद्या के रहस्य को जानकर जिस योगविधि का आविष्कार किया, अनंतकाल तक वहीं विधि अमृतत्व दीर्घ आयु की प्राप्ति के लिए सर्वोत्कृष्ट मानी जाती रही। प्राण की प्रतिष्ठा ही अमृत है। कहा गया– रेतो वै प्राणः। च्यवन से संवाद के दौरान अश्विनी कुमार ने यौवन के बदले उनसे सोमपान और बनाने की विधि की जानकारी मांगते हैं। इसमें उनको वीर्य, रेत यानी शरीरस्थ रस का नाम ही सोमरस के रूप में मिलता है। शरीर की नाड़ी रस की शुद्धि ही अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण है। इस पर ही मस्तिष्क की समस्त चेतना निर्भर है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि **प्राणो अमृतं तद् हि अग्रे रूपम्**। अब यहाँ सवाल उठता है कि वैदिक काल में वे दिव्य ऋषि या वैद्य कौन थे, जिन्होंने अमृत पान या अपनी चिकित्सा से मृत्यु पर विजय प्राप्त की। इसका जवाब अथर्ववेद की ऋचाओं में मिलता है– हे प्राण और अपान! तुम इस शरीर में बराबर पंचरण करते रहो। शरीर को छोड़कर मत जाओ, तुम दोनों जोड़ीदार बनकर संयुक्त सखा की तरह रहो। हे मनुष्य! तुम निरंतर वर्धमान या वर्धिष्णु होते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहो। वसिष्ठ अग्नि तुम्हारा रक्षक हो। (7.53.2)। यही कारण है कि अथर्ववेद में प्राण और अपान को देवताओं का वैद्य कहा गया है। ये ही अश्विनी कुमार है। (7.53.1)।

ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में उस परमात्मा का वर्णन करते हुए कई बार उसे अमृत का पर्याय कहा गया है। इसमें कहा गया है कि वह पुरुष हजार सिर, आंख और पाव वाला है। वह सारी भूमि को धारण किये हुए हैं और वह दस अंगुल में समाया है। अगले सूक्त में कहा गया है कि वह पुरुष ही यह सब कुछ है जो हुआ वह सब वही है। वह अमृत है, ईशान है। वह अन्न है, स्थित है और तिरोहित है। यह सब उसी की महिमा है। और पुरुष अनंत है। विश्व उसके एक पाद में है, और त्रिपाद में अमृतमय जगत है। यही कारण है कि वैदिक सूक्तों में मधु और सोम का बार-बार उल्लेख आता है। ऋग्वेद में जो मधु और सोम है, वही अश्विनी और धन्वंतरि के हाथों में बार-बार दर्शाया गया है। सभ्यता के उषा काल से ऋषियों की जिज्ञासा परमज्ञान में रही। उनका चिरंतन प्यास आनंद रहा। और इस आनंद एवं ज्ञान के सत्य की खोज में कर्म, साधना एवं सृजन ही उनका एकमेव लक्ष्य रहा। यही कारण है कि ऋग्वेद में सोम एक देव है, एक वनस्पति है और वनस्पति एवं औषधि के राजा भी है। ऋग्वेद का सूक्त (1.91.22) में इन औषधि एवं वनस्पति का जनक सोम है। ऋषि कहते है कि हे सोम हम आपको एकाग्र विवेचन बुद्धि एवं मनीषा के द्वारा ही जान पाये है। सोम का ज्ञान सोम की ही कृपा है। हे सोम, आपके उद्भव से हम याजक, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का गायन करते हैं।[4]

ऋषियों के लिए मधुरस में आनंद की अनुपम अभिव्यक्ति है। वे कहते है कि वायु मधुर हो। नदियों का प्रवाह मधुर हों। औषधियों में मधुरस हों। दिव्य लोक मधुर हों। पृथ्वी का रजगण मधुर हों। रात्रि और दिवस मधुर हों। उषा मधुर हों। वनस्पतियां मधुर हों।

4 यजुर्वेद (9.50.1/1.91.1)।

सूर्य किरणें मधुर हों। दुग्ध मधुर हों। (1.90.6-8)। भारतीय जीवन में सोम एवं मधु के आकांक्षी ऋषियों की सूक्तों में मधुरस, मधुछंद, मधुमंत्र, मधुऋतु, मधुप्रीति, मधुमक्खी, मधुच्छंदा ऋषि का उल्लेख मिलता है। विश्वामित्र के पुत्र ऋषि मधुच्छंदा ने ऋग्वेद के दस सूक्तों की रचना की है। इनके दो पुत्र जेता और अघमर्षण हुए, जिन्होंने एक-एक सूक्तों की रचना की।[5] ऋग्वेद में सोम और मधु की अभिलाषा समान है। इंद्र को सोम प्रिय है। सोम का स्वाद मधुर है। **स्वादु रसः मधुपेय** (6.44.21)। एक सुंदर पेड़ पर दो पक्षी हैं। वे मध्वदः हैं, मधुप्रिय हैं। उस वृक्ष के फल स्वादः पिप्पलम -स्वादिष्ट यानी मधुर है। इंद्र को सोम प्रिय है लेकिन सोम मधु होना चाहिए। वे नदियों को भी मीठे पानी से भरते हैं। (1.162.6)। इतना ही ऋषियों ने आकाश के जल में भी मधु का वास देखा। पर्यजन्य वर्षा लाते हैं, अतएव वे **मधुदोहमः** है। ऋग्वेद में जल को माता कहा गया है। वे जल देवी माता है। वे **मधुमद्भिः अणेमिः** है, मधुर जलों से भरीपूरी है। (4.3.12)। द्यावा-पृथ्वी से स्तुति है कि आप दोनों मधुश्च्युता हैं, मधुरस बहाती है। आप हमको मधुरस से मिलाओ (6.70.5)।

सोम के बारे में कहा गया है— **पवसव सोम धाराया** यानी सोम की धाराएँ मधुरसा है। चैत्र मास का वैदिक नाम है मधुमास और यह नाम शस्य या अन्न में निहित मधु अर्थात सुस्वादुता के कारण ही है। ऋग्वैदिक आर्य मधु क बार-बार चर्चाएँ करते हैं। परंतु मधु से उनका तात्पर्य पुष्प-मधु बहुत ही कम होता है। मधु का वैदिक अर्थ है मिठास या सुस्वादुता या तज्जनित प्राण-रस, पोषक-रस, आनंद और जीवन। दुग्ध और मधु की प्रार्थना सोमपायी आर्य की चरम प्रार्थना है। अन्न का भी अर्थ शस्य नहीं बल्कि खाद्य पदार्थ है। आज भी अनाज का अर्थ हिंदी में अन्न या शस्य होता है तो बांग्ला में तर-तरकारी या व्यंजन और असमिया में यही अंजा अर्थात् शाक-तरकारी बन जाता है। सभ्यता के विकास के साथ दुग्ध और मधु के लिए जो प्रार्थना थी, वह दुग्ध और भात में बदल गया।[6] विष्णु द्वादश आदित्यों में से एक हैं और आदित्य देवताओं का मधु है। यानी आदित्य स्वयं मधु है। विष्णुसहस्रनाम में विष्णु के तीन नाम मधु से जुड़े हैं- मधु, माधव और मधुसूदन।

डॉ सुकुमार सेन ने भारतीय साहित्य कथा में लिखते है कि मधु के उत्स का अधिकारी या भंडारी माधव ह। भगवान के श्रीचरणों से मधु झरता है, आकाश उसका परमपद है। और इस आकाश से मधु झर रहा है। षड् ऋतुओं द्वारा, सूर्य की किरणों द्वारा एवं मरुद्गण द्वारा हम तक यह मधु पहुंच रहा है। ऋग्वेद में कहा गया है क विष्णोः परमे पदे मध्व उत्सः। मधुसूदन का अर्थ मधु को परोसने वाला। सारी सृष्टि के चर-अचर पत्तल में मधु को परोसने वाले देवता का नाम मधुसूदन है।

शतपथ ब्राह्मण में काफी रोचक वर्णन है। यहाँ अन्न सोम है— **अन्नं वै सोमः** (2.9.18)। अन्न के पाचन से जो शक्ति मिलती है, वह सोम है। प्राण का नाम सोम है। कहा गया कि इस संसार में मस्तिष्क को शक्ति देने के लिए सोम या रेत से बढ़कर दिव्य कोई पदार्थ नहीं है। प्राण का संचालन करनेवाला इंद्र है जो इंद्रियों को नियंत्रित रखता है। यह इंद्र आत्मा है, जो शरीर में देवों के प्रतिनिधि इंद्रियों का अधिपति है। वह देवों पर शासन करता है। (ऋग्वेद 1.12.09)। मन और बुद्धि रूपी इंद्र यानी आत्मा को यही सोम प्रिय है जिसका नाम अमृत है। वीर्यरूपी सोम की रक्षा अमरत्व प्रदान करती है और इसका क्षय मृत्यु देती है।

5 राहुल सांकृत्यायन: ऋग्वैदिक आर्य, पृष्ठ- 37।

6 कुबेर नाथ रायः निषाद बांसुरी, प्रतिश्रुति प्रकाशन, पृष्ठ- 150।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि सोम की कलाओं की वृद्धि से अमृत का विकास होता है और उसमें क्षय से अमृत का नाश होता है। अब चूंकि देवता सोम का संवर्द्धन करते हैं और असुर उसका पान करते हैं। जब हम सोम का पान करते है और उसमें कमी आती है, तो जीव, पशु, मनुष्य सभी मृत्यु चक्र के भंवर में पड़ जाते हैं। इसलिए भारतीय जीवन में सोम को मूलाधार मान कर उसके संरक्षण की बात कही गयीं। इस प्रकार इंद्र के सोमपान में भारतीय ब्रह्मचर्य का गूढ़ रहस्य समाया है। शरीर की शक्ति को जब शरीर के लिए संरक्षित किया जाता है तब वह सोमपान हुआ।[7]

सोम का शिव के संजीवनी विद्या से संबन्ध है, क्योंकि शिव को महायोगी एवं आयुर्वेद का महागुरू माना जाता है। समुद्र मंथन के विष का वे सहज पाचन करते हैं और उसको निष्प्रभावी करने की विधि मृत संजीवनी विद्या भी जानते हैं। वह सतत साधना में रत है, वह अवधूत है जो सदैव ध्यान में रहकर अपनी काम क्रिया को शून्य कर दिये हैं। भौतिक वासना का लेशमात्र भी अंश नहीं होने के कारण ही वह इंद्र की तरह देवताओं में महादेव है। इंद्र को जो शक्ति सोमपान से प्राप्त होता है, वह महादेव को सहजस्फूर्त ही प्राप्त है। उन्होंने काम को भष्म कर अपनी शक्ति को देह में ही संचित कर दिये हैं। इस कारण वह अर्द्धनारीश्वर है। देव को अमृत मिलने पर असुरों को संजीवनी देकर समाज में संतुलन कायम करते हैं। यह स्वस्थ्य जीवन, आरोग्य एवं शक्तिशाली काया का विज्ञान है। सोम, अमृत और संजीवनी एक विद्या से प्राप्त होने वाला फल है, जो हमारे जीवन को अमरत्व प्रदान करता है। कुछ विद्वान इसे ही संजीवनी बूटी कहते हैं। यदि हम ऋग्वेद के नौवें "सोम मंडल" में वर्णित सोम के गुणों को पढ़ें तो यह संजीवनी बूटी के गुणों से मिलते हैं।

वर्तमान में तथाकथित सोमलता

इससे यह सिद्ध होता है कि सोम ही संजीवनी बूटी रही होगी। ऋग्वेद में सोमरस के बारे में कई जगह वर्णन है। एक जगह पर सोम की इतनी उपलब्धता और प्रचलन दिखाया गया है कि इंसानों के साथ-साथ गायों तक को सोमरस भरपेट खिलाए और पिलाए जाने की बात कही गई है।

सोम के संबन्ध में एक शोध की चर्चा हाल में हुई हैं। गुरुनानक देव विश्वविद्यालय के जैव प्रौद्योगिकी विभाग ने लेह-लद्दाख क्षेत्र में पाये जानेवाले सोलो नामक पौधे का टिशु प्लांट तैयार किया है जिसका नाम रोडियोला दिया गया है। इसके प्रायोगिक परीक्षण से पता चलता है कि यह त्रेतायुगीन रामायण में वर्णित संजीवनी बूटी है। इसके उपयोग से क्षेत्रों में ऑक्सीजन यानी प्राणवायु बढ़ाने बढ़ती उम्र के प्रभाव को कम करने, कम वायु दबाव वाले क्षेत्रों में रहने और जैव रसायन से पैदा हुए विकिरण के प्रभाव को खत्म करने के लिए किया जाता है। यह बूटी शरीर को सीधे ऑक्सीजन ही नहीं देती है, बल्कि उसकी प्रतिरोधक

7 उरु-ज्योति, वासुदेव शरण अग्रवाल: प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ- 144।

क्षमता भी बढ़ा देती है। हिमालय के 15 से 18 हजार फीट ऊंचाई पर यह सफेद, लाल और पीला रंग में यह पौधा मिलता है। यह पौधा तुलसी के पत्ते की तरह होता है, जिसका उपयोग स्थानीय लोग चिंता, थकान, और अवसाद को दूर करने के लिए करते हैं।

भारतीय इतिहास में संजीवनी और मृतसंजीवनी के उपयोग की तीन कथाएँ प्रचलित है। देवासुर संग्राम में देव और असुर के बीच युद्ध के दौरान मरनेवाले असुरों को उनके आचार्य शुक्राचार्य द्वारा इस मृतसंजीवनी से जीवित करने की कथा मिलती है। चूंकि गुरु वृहस्पति इस विद्या में पारंगत नहीं थे, अतएव देवताओं को संग्राम में हार मिलती थी। यही कारण है कि बाद में देवताओं ने वृहस्पति के पुत्र कच को शुक्राचार्य के पास मृतसंजीवनी की विद्या सीखने के लिए भेजा, जहाँ कच ने यह विद्या सीखीं। असुरों के ज्ञात होने पर उन्होंने गुरु वृहस्पति के पुत्र कच को मार डाला। इस मामले में असुर गुरु की पुत्री देवहयानी ने हस्तक्षेप कर मृत संजीवनी विद्या से कच को जीवित करा दिया था। दूसरा प्रसंग परशुराम द्वारा अपने पिता जमदग्नि के कहने पर अपनी माता और भाईयों की हत्या कर दी गया बाद में जमदग्नि द्वारा संजीवनी विद्या से उनको पुनर्जीवित कर दिया गया। तीसरी कथा, राम और रावण के बीच संघर्ष के दौरान से जुड़ी है। मेघनाथ जब लक्ष्मण को अपने शक्तिबाण से मूर्च्छित कर देता है तो वैद्य सुषेण को बुलाया जाता है। उनका कहना है कि लक्ष्मण को जीन देने की शक्ति मृत संजीवनी बूटी में है, जो द्रोणगिरि पर्वत पर मिलता है। इन तीनों कथाओं से भारतीय परम्परा में मृत संजीवनी विद्या की जानकारी मिलती है। महर्षि वाल्मीकि और वेद व्यास ने अपने ग्रंथों पर इस वनस्पति के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। सुषेण वैद्य ने संजीवनी बूटी के बारे में बताया था कि संजीवनी बूटी की खासियत है कि वह रात में चमकती है। इसलिए हनुमानजी को जब पहचान में संकट हुआ तो उन्होंने ऐसे चमकने वाली वनस्पतियों के साथ पहाड़ को भी उठा लाया था। सोम को न पहचान पाने की विवशता का वर्णन भी रामायण में मिलता है। हनुमान दो बार हिमालय जाते हैं, एक बार राम और लक्ष्मण दोनों की मूर्छा पर और एक बार केवल लक्ष्मण की मूर्छा पर, मगर सोम की पहचान न होने पर पूरा पर्वत ही उखाड़ लाते हैं। दोनों बार लंका के वैद्य सुषेण ही असली सोम की पहचान कर पाते हैं। आयुर्वेद में भी ऐसी चमकने वाली दिव्य औषधियों का वर्णन है जो संजीवनी-बूटी से मेल खाती है। इनमें सोम, महासोम, चंद्रमा, अंशुमान, रजतप्रभ, दुर्वा कनियान, कनकप्रभ, प्रतानवान, लालवृत, करवीर, अंरमान, आदि है।[8]

ऐसे ही चमत्कारी बूटी के बारे में वैद्य सुरेश चतुर्वेदी ने अपने आलेख “संजीवनी का चमत्कार“ विषय पर धर्मयुग के जनवरी 1983 अंक में एक लिखा था। उनको यह जड़ी-बूटी का वनस्पति सहयाद्रि पर्वतमाला में भीमाशंकर ज्योर्तिलिंग के जंगल में मिली थी। इस सूखी लकड़ी की विशेषता यह थी अंधेरे में भी इसकी जड़ी को गीला करने पर यह प्रकाश-पुंज से पुस्फुटित हो जाती थीं। वैद्य सुरेश ने सोम प्रकृति के इस पादप के बारे में बताया किया कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को इसमें एक पत्ता आता है, द्वितीय को दो, तीसरे को तीन और पूर्णिमा को इस सोम पादप में पूरे 15 पत्ते आते हैं। इसके बाद विपरीत चक्र शुरू होता है। और कृष्ण पक्ष में हरेक दिन एक-एक पत्ता कम होता जाता है तथा अमावस्या के दिन यह पौधा पूरी तरह सूखी लकड़ी में बदल जाता है।

महादेव को प्रसन्न करने के लिए सावन की सोमवारी को अर्पण का विशेष विधान है। सोम स्वयं में

8 सोमरसः शराब या चामत्कारिक औषधि, वेब दुनिया, अनिरुद्ध जोशी शतायु

शीतलता और आरोग्य के देव है। सोम का अर्थ भी दिव्य औषधि से होता है। प्राचीन भारत में सोम लताओं का उपयोग यज्ञ-अनुष्ठान, पूजा-अर्चना और कर्मकांड के उपयोग में होता रहा है। सोमरस का निर्माण भी सोम लता से मिलता था, जिसके रसपान से व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक शक्ति प्राप्त होती थी। इसके रसपान से आयुवृद्धि होती थी।

सोमवार के अधिष्ठाता देवता का नाम चंद्रमा है। चंद्रमा के किरणों से वनस्पति और प्रकृति में मधुरस की बरसात होती है। चंद्रकिरणों से वनस्पतियों में रस और मधु के रसायन से निर्मित है। इस कारण चंद्रमा को आयुर्वेद में औषधीश कहा गया है। शिव को चंद्र बहुत प्रिय है। इस प्रेम का कारण उसमें मधुवास है। शिव खुद चंद्र को सर पर धारण करते हैं।

समुद्र मंथन के समय अमृत वितरण के समय चंद्रमा ने ही देवताओं को बताया कि देवताओं के बीच राहु बैठा है। इस पर राहु ने चंद्रमा को मारने दौड़ा, लेकिन शिव के शरण में चंद्रमा थे, इस कारण उनको कोई चोट नहीं पहुंचा सका। महादेव का विवाह दक्ष कन्या सती से हुआ जबकि चंद्रमा का विवाह भी दक्ष की दूसरी पत्नी वीरणी की 27 कन्याओं से हुआ था। इस कारण भी चंद्रमा को शिव प्रिय है।

भारतीय ऋषियों ने सोम रस को काफी श्रद्धा और सम्मान से स्मरण किया है। ऋग्वेद के नौवें मंडल में कई ऋषियों ने ऋचाओं के माध्यम से उसके संबन्ध में विशिष्ट बातें कहीं है। इसमें अधिकतर ऋषियों ने इंद्र के लिए सोमनपान की बात कहीं है।

ऐसे में यह प्रतीत होता है कि यहाँ इंद्र का अर्थ शरीर के अधिपति आत्मा से है, जो समस्त इंद्रिय के संचालन एवं जीवन का आधार है। जब हम केंद्र में प्राण और अपान को रखकर आत्मा के संवर्द्धन में सोम का विचार करते हैं तो सारी सोम का सही परिप्रेक्ष्य एवं भावार्थ प्राप्त होता है। सोम वाला नवां मंडल

> **“सोम ऐसी वस्तु थी, जो समूचे समाज के लिए उपयोगी एवं उसके कल्याण के लिए जरूरी थी। यह ऋषि कहते हैं- हे राजा सोम, तुम हमारे लिए बहो, हमारी गायों के कल्याण के लिए, जनों के कल्याण के लिए, घोड़ों के कल्याण के लिए और औषधियों के कल्याण के लिए बहो।”**

विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दा के सूक्त से शुरू होता है। इसकी पहली ऋचा में कहा गया है कि इंद्र के पीने के लिए छाने गये है सोम। तुम स्वादिष्ट और मदिष्ट धारा के साथ प्रवाहित होओ। विश्वामित्र के एक और मानस पुत्र शुनःशेप ऋषि (9.3.1) यह अमर देव द्रोणों यानी घड़ों में बैठने के लिए पक्षी के समान डाला जाता है।

सोम पर सबसे अधिक सूक्तों की रचना काश्यप-असित-देवल ने किया है। उनके एक सूक्त से स्पष्ट हो जाता है कि यह ऐसी वस्तु थी, जो समूचे समाज के लिए उपयोगी एवं उसके कल्याण के लिए जरूरी थी। यह ऋषि कहते हैं– हे राजा सोम, तुम हमारे लिए बहो, हमारी गायों के कल्याण के लिए, जनों के कल्याण के लिए, घोड़ों के कल्याण के लिए और औषधियों के कल्याण के लिए बहो। (9.3.4)।

इसके अगले सूक्त से स्थिति और स्पष्ट हो जाती है, जब वह कहते है कि– अरुण यानी सूर्यदेव, तुम स्वशक्तिमान द्यौ यानी आकाश को छूनेवाले सोम के लिए गाथा गाओ। ऋग्वेद की ऋचा में एक सूक्त है। इंद्रदेव को तृप्त करने वाले सोमदेव! आप पवित्र होकर शब्द करते हुए शत्रु का विनाश करें। हे सोम, स्वार्थियों का नाश करते हुए आप आप तेजस्वी रूप में इस यज्ञ

“अतः यह बात का स्पष्ट हो जाती है कि सोमरस जो भी हो लेकिन वह शराब या भांग तो कतई नहीं थी। देवताओं के लिए समर्पण का यह मुख्य पदार्थ था और अनेक यज्ञों में इसका बहुविध उपयोग होता था। सबसे अधिक सोमरस पीने वाले इन्द्र और वायु हैं। पूषा आदि को भी यदा-कदा सोम अर्पित किया जाता है, जैसे वर्तमान में पंचामृत अर्पण किया जाता है।”

स्थल पर स्थित हो। इस सूक्त का मतलब है कि जब हम अपने भीतर और अंदर के बुरे विचार तथा अंधकार को दूर करेंगे। भावनाओं की शुद्धि करेंगे, तो वह सूर्य जो आत्मा है। जो स्व है, वह अपने आप प्रकट होगा। सोम गहन काव्यात्मक उत्साह से भरा एक प्रेरक भावनात्मक वचन है। इसके शब्द से श्रद्धा उत्पन्न करनेवाला भक्ति रस मिलता है। इस प्रकार का गुणगान हरेक युग में होता रहा है। गुरु गोविंद सिंह के वचन है। हे शिव, मुझे यह वर दे कि शुभ कामों को करने से मैं कभी भी पीछे न हटूं। जब मैं युद्ध करने जाऊं, तो शत्रु से डर उत्पन्न नहीं हो। युद्ध में अपनी जीत पक्की करूं और मैं अपने मन को सीखा सकूं कि वह इस बात का लालच करें कि आपके गुणों की बखान करता रहूँ। जब अंतिम समय आए, तब मैं रणक्षेत्र में युद्ध करते हुए मरूं।[9]

वेदों के अनुसार सोम का संबन्ध अमरत्व से भी है। वह पितरों से मिलता है और उनको अमर बनाता है। सोम का नैतिक स्वरूप उस समय अधिक निखर जाता है, जब वह वरुण और आदित्य से संयुक्त होता है— हे सोम, तुम राजा वरुण के सनातन विधान हो, तुम्हारा स्वभाव उच्च और गंभीर है, प्रिय मित्र के समान तुम सर्वांग पवित्र हो, तुम अर्यमा के समान वंदनीय हो। त्रित प्राचीन देवताओं में से थे। उन्होंने सोम बनाया था तथा इंद्रादि अनेक देवताओं की स्तुतियां समय-समय पर की थीं।

महात्मा गौतम के तीन पुत्र थे। तीनों ही मुनि थे। उनके नाम एकत, द्वित और त्रित थे। उन तीनों में सर्वाधिक यश के भागी तथा संभावित मुनि त्रित ही थे। कालांतर में महात्मा गौतम के स्वर्गवास के उपरांत उनके समस्त यजमान तीनों पुत्रों का आदर-सत्कार करने लगे। उन तीनों में से त्रित सबसे अधिक लोकप्रिय हो गए।

ऋग्वेद की एक ऋचा में लिखा गया है कि— यह निचोड़ा हुआ शुद्ध दधि मिश्रित सोमरस, सोमपान की प्रबल इच्छा रखने वाले इन्द्रदेव को प्राप्त हो। वैदिक ऋचाओं में इस सोमरस को बनाने की विधि का उल्लेख किया गया है— हे वायुदेव! यह निचोड़ा हुआ सोमरस तीखा होने के कारण दुग्ध में मिश्रित करके तैयार किया गया है। आइए और इसका पान कीजिए॥ (ऋग्वेद—1.23.1)। नीचे की ओर बहते हुए जल के समान प्रवाहित होते सैकड़ों घड़े सोमरस में मिले हुए हजारों घड़े दुग्ध मिल करके इन्द्रदेव को प्राप्त हों। (ऋग्वेद—1.30.2)।

इन सभी मंत्रों में सोम में दही और दूध को मिलाने की बात कही गई है, जबकि यह सभी जानते हैं कि शराब में दूध और दही नहीं मिलाया जा सकता। भांग में दूध तो मिलाया जा सकता है लेकिन दही नहीं, लेकिन यहाँ यह एक ऐसे पदार्थ का वर्णन किया जा रहा है जिसमें दही भी मिलाया जा सकता है। अतः यह बात का स्पष्ट हो जाती है कि सोमरस जो भी हो लेकिन वह

9 प्रमोद भार्गव: पुरातन विज्ञान, प्रभात प्रकाशन एवं पृष्ठ-33।

शराब या भांग तो कतई नहीं थी। देवताओं के लिए समर्पण का यह मुख्य पदार्थ था और अनेक यज्ञों में इसका बहुविध उपयोग होता था। सबसे अधिक सोमरस पीने वाले इन्द्र और वायु हैं। पूषा आदि को भी यदा-कदा सोम अर्पित किया जाता है, जैसे वर्तमान में पंचामृत अर्पण किया जाता है।

सोम केवल भौतिक रूप में एक लता मान सोमन के विराट अर्थ को संकुचित कर देना होगा। सोम को आकाशीय चन्द्रमा का रस भी माना जाता है। ऋग्वेद अनुसार सोम की उत्पत्ति के दो प्रमुख स्थान हैं— स्वर्ग यानी चंद्र का मधु बौछार और पार्थिव पर्वत। अग्नि की भांति सोम भी स्वर्ग से पृथ्वी पर आया। मातरिश्वा ने तुम में से एक को स्वर्ग से पृथ्वी पर उताराय गरुत्मान ने दूसरे को मेघशिलाओं से। हे सोम, तुम्हारा जन्म उच्च स्थानीय है। तुम स्वर्ग में रहते हो, यद्यपि पृथ्वी तुम्हारा स्वागत करती है। सोम की उत्पत्ति का पार्थिव स्थान मूजवंत पर्वत (गांधार-कम्बोज प्रदेश) है—(ऋग्वेद अध्याय सोम मंडल— 4, 5, 6)।

स्वर्गीय सोम की कल्पना चंद्रमा के रूप में की गई है। छांदोग्य उपनिषद में सोम राजा को देवताओं में भोज्य कहा गया है। कौषितकी ब्राह्मण में सोम और चन्द्र के अभेद की व्याख्या इस प्रकार की गई है। यहाँ दृश्य चन्द्रमा ही सोम है। सोमलता जब लाई जाती है तो चन्द्रमा उसमें प्रवेश करता है। जब कोई सोम खरीदता है तो इस विचार से कि दृश्य चन्द्रमा ही सोम है। उसी का रस पेरा जाए। सोमपान की प्रथा केवल ईरान और भारत के वह इलाके जिन्हें अब पाकिस्तान और अफगानिस्तान कहा जाता है यहीं के लोगों में ही प्रचलित थी। इसका मतलब पारसी और वैदिक लोगों में ही इसके रसपान करने का प्रचलन था। इस समूचे इलाके में वैदिक धर्म का पालन करने वाले लोग ही रहते थे। "स" का उच्चारण "ह" में बदल जाने के कारण अवेस्ता में सोम के बदले होम शब्द का प्रयोग होता था और इधर भारत में सोम का।

सोम एक लता या वनस्पति नहीं है। वैदिक परिभाषा में सोम का विविध अर्थ है। समस्त लताएं, वनस्पतियां एवं अन्न का नाम सोम है। कण्व ऋषियों ने मानवों पर सोम का प्रभाव बतलाया है— यह शरीर की रक्षा करता है, दुर्घटना से बचाता है, रोग दूर करता है, विपत्तियों को भगाता है, आनंद और आराम देता है, आयु बढ़ाता है और संपत्ति का संवर्द्धन करता है। इसके अलावा यह विद्वेषों से बचाता है, शत्रुओं के क्रोध और द्वेष से रक्षा करता है, उल्लासपूर्ण विचार उत्पन्न करता है, पाप करने वाले को समृद्धि का अनुभव कराता है, देवताओं के क्रोध को शांत करता है और अमर बनाता है। विप्रत्व और ऋषित्व का सहायक है। सोम अद्भुत स्फूर्तिदायक, ओजवर्द्धक तथा घावों को पलक झपकते ही भरने की क्षमता वाला है, साथ ही अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति कराने वाला है।[10]

अध्ययन से यह पता चला है कि सोम नाम से एक लता होती थी, जो शृंखलाओं में पाई जाती हैं। राजस्थान के अर्बुद, उड़ीसा के महेन्द्र गिरी, हिमाचल की पहाड़ियों, विंध्याचल, मलय आदि अनेक पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी लताओं के पाए जाने का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वान मानते हैं कि अफगानिस्तान की पहाड़ियों पर ही सोम का पौधा पाया जाता है। यह बिना पत्तियों का गहरे बादामी रंग का पौधा है। अध्ययनों से पता चलता है कि वैदिक काल के बाद यानी ईसा के काफी पहले ही इस वनस्पति की पहचान मुश्किल होती

10 राजीव मुद्गल: देवताओं का मौन, प्रलेक प्रकाशन पृष्ठ-34।

गई। ऐसा भी कहा जाता है कि सोम (होम) अनुष्ठान करने वाले लोगों ने इसकी जानकारी आम लोगों को नहीं दी, उसे अपने तक ही सीमित रखा और कालांतर में ऐसे अनुष्ठानी लोगों की पीढ़ी, परम्परा के लुप्त होने के साथ ही सोम की पहचान भी मुश्किल होती गई। ऋग्वेद में सोमरस के बारे में बताया गया है कि सोमरस एक ऐसा पदार्थ है, जो संजीवनी की बलवर्धक, आयुवर्धक व भोजन-विष के प्रभाव को नष्ट करने वाली औषधि है।

स्वादुष्किलायं मधुमां उतायम्,
तीव्रः किलायं रसवां उतायम।
उतोन्वस्य पपिवांसमिन्द्रम,
न कश्चन सहत आहवेषु॥

— ऋग्वेद (6-47-1)

सोमरस बनाने की विधि भी ऋग्वेद की ऋचाओं में बतायी गयी है। इसमें कहा गया है कि उलूखल और मूसल द्वारा निष्पादित सोम को पात्र से निकालकर पवित्र कुशा के आसन पर रखें और अवशिष्ट को छानने के लिए पवित्र चर्म पर रखें। (ऋ. 28.9)। सोम एक औषधि है जिसको कूट-पीसकर इसका रस निकालते हैं। निरुक्त शास्त्र (11-2-2)।

सोम को गाय के दूध में मिलाने के पश्चात दही में मिश्रित किया जाता है। शहद अथवा घी के साथ भी मिश्रण किया जाता था। सोम रस बनाने की प्रक्रिया वैदिक यज्ञों में बड़े महत्त्व की है। इसकी तीन अवस्थाएँ हैं— पेरना, छानना और मिलाना। सोम के डंठलों को पत्थरों से कूट-पीसकर तथा भेड़ के ऊन की छलनी से छानकर प्राप्त किए जाने वाले सोमरस के लिए इंद्र, अग्नि ही नहीं और भी वैदिक देवता लालायित रहते हैं, तभी तो पूरे विधान से होम (सोम) अनुष्ठान में पुरोहित सबसे पहले इन देवताओं को सोमरस अर्पित करते थे। वर्तमान समय में हिंदू घरों में इसी विधि का पालन पंचामृत बनाने में किया जाता है, जो सोमरस बनाने का ही आधुनिक प्रारूप है। सोम के कार्य एवं परिणाम पर भी ऋषि काश्यप-असित-देवल ने विस्तार से वर्णन किया है। यह बड़े यज्ञ में बहुत उपयोगी है। इसका पान करने वाला तृप्तकर्त्ता ओज से धन धारण करता है, यूथपति वृषभ सींगों को हिलाता है। सोम का ऋग्वैदिक काल में अधिक उपयोग होता था। ऋग्वेद के नवम मंडल के 114 सूक्तों में सोम के गुणों की महिमा के साथ उसकी प्राप्ति के स्थान का वर्णन है। रहुगण के पुत्र गौतम कहते है कि सोम ऊँचे पहाड़ों पर होता था। पहाड़ पर बैठे भूरे यानी सोम के लिए गाये दूध और घी दुहाती है।

***

दीपक के प्रति एक कवि की उक्ति

मन्दिरतिमिरपाकुरु दीप! हिमांशुं किमाक्षिपसि।
भवनाद् बहिर्मनागपि पवनात् परिशीलयात्मानम्॥

हे दीपक, तुम घर के अन्दर के अन्धकार दूर करो। तुम चन्द्रमा पर क्यों उँगली उठाते हो! घर के बाहर एक बार भी हवा के झोंके से भेंट होगी तो अपनी औकात याद आ जायेगी!

अजर-अमर हनुमान्

श्री संजय गोस्वामी

लेखन के क्षेत्र में 1500 से अधिक लेख विभिन्न विज्ञान तथा हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए उन्हें कई सम्मान 'भारत गौरव, 2011', भक्तिकाव्य श्री 2007, डॉ गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार, 2009, विज्ञान परिषद शताब्दी पुरस्कार 2013, डॉ सीवी रमन विज्ञान संचार पुरस्कार, 2015, एन.एफ.एम.आई. 2021 अवार्ड आदि प्राप्त हैं।

संप्रति : हिमालय व हिंदुस्तान के संरक्षक सदस्य, ग्रामीण विकास संदेश, सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंस एंड रूरल डेवलपमेंट के सह संपादक, तथा विज्ञान गंगा पत्रिका,(बीएचयू)., सलाहकार बोर्ड के सदस्य हैं

यमुना जी/13, अणुशक्तिनगर, मुंबई-94, ई मेल -sr44000791@gmail.com

महावीर हनुमान कलियुग के प्रमुख देवताओं में से एक माने जाते हैं। वाल्मीकि-रामायण के पूर्वोत्तर पाठ के अनुसार श्रीराम के वरदान से ये एक ओर अजर-अमर हैं तो सीता माता के वरदान से इनका नाम जहाँ लिया जायेगा, वहाँ से सभी विघ्न-बाधाएँ दूर भाग जायेंगी। यह वरदान इनके देवत्व को निर्धारित करता है। हनुमानजी का एक अन्य तान्त्रिक रूप भी है, जिनमें वे पंचमुखी है। किन्तु रामोपासना की परम्परा में वे एकमुखी तथा रामभक्त हैं। यहाँ रामभक्त हनुमानजी सम्बन्धित कथा दी गयी हैं। इनमें कुछ ऐसे प्रसंग भी हैं, जिनका कोई साहित्यिक आधार उपलब्ध नहीं है, लेकिन ये प्रसंग हनुमानजी के ऐश्वर्य को स्थापित अवश्य करते हैं।

वर्षों की घोर तपस्या के बाद अंजना ने एक विलक्षण बुद्धि के बालक को जन्म दिया। कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को अपराह्ण के समय (अन्य मत से चैत्र शुक्ल पूर्णिमा मंगलवार को मध्य रात्रि) में अंजना के गर्भ से भगवान शिव अपने रुद्रदेह को त्याग कर वानररूप हनुमान बन कर अवतरित हुए।

भगवान् शिव ने ग्यारहवें रुद्र के रूप में अंजना के गर्भ से जन्म लिया, इसलिये शास्त्रों में हनुमानजी को रुद्रावतार कहा गया है।

माता अंजना पूर्वजन्म में पुंजिकस्थली नाम की अप्सरा थी। रावण जब देवलोक गया तो इसके रूप और तेज को देख कर मोहित हो गया। रावण ने कामुक होकर इसका हाथ पकड़ लिया।अपना हाथ छुड़ा कर क्रोधित पुंजिकस्थली सीधे ब्रह्माजी के पास गई और कहा, 'आपका वरदान पाकर ऐसे दुष्ट स्वभाव के लोग देवलोक में विचरण करते रहते हैं और आपके शरणागतों के साथ अत्याचार, अनाचार करते हैं।'

ब्रह्माजी ने रावण से कहा, 'यदि आज के बाद तुम किसी परायी स्त्री को बुरी नजर से देखोगे तो तुम्हारे सिरके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।'

अप्सरा इससे संतुष्ट नहीं हुई। उसने ब्रह्माजी से कहा, 'मैं इससे स्वयं बदला लूँगी।' अत्रि मुनि के शाप के कारण इसी पुंजिकस्थली नाम की अप्सरा ने कुंजर वानर के यहाँ जन्म लिया, जिसका नाम अंजना (अंजनी) रखा गया।

अंजना का विवाह वानरराज केसरी से हुआ। केसरी राक्षसों को मार कर ऋषियों की रक्षा किया करते थे। ऋषियों ने प्रसन्न होकर केसरीजी को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा होने वाला बालक बल, बुद्धि और विद्या से परिपूर्ण होगा। बड़ा होकर श्रीराम का अनन्य भक्त बनेगा व सारे संसार में पूजनीय एवं वंदनीय होगा।अंजना और केसरी सुमेरु पर्वत से किष्किन्धा चले गये। अंजना ने मतंग ऋषि के आश्रम में एक हजार वर्ष तक तपस्या की। इसके बाद सौ वर्ष तक वैंकटेश्वर पर्वत पर तपस्या की। इस अवधि में केसरीजी ने उन्हें अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। जब अंजना तपस्या कर रही थी तो त्रिदेव उनके पास पहुँचे। अंजना ने उनसे वरदान माँगा कि मेरे होने वाले पुत्र की सभी शक्तियाँ आपकी शक्तियों से बढ़ कर हों। पुत्र इस संसार में असुरों का नाश करे और देवताओं की रक्षा करे। त्रिदेव ने तथास्तु कह दिया।

सृष्टि के संहारक भगवान रुद्र ने अपने प्रिय हरि की अधिकाधिक सेवा करने व कलिकाल में भक्तों की रक्षा करने के लिये पवनदेव के पुत्र और वानरराज केसरी के क्षेत्रज पुत्र के रूप में अवतरित होने का निर्णय लिया। पवनदेव ने भी अंजना को वरदान दिया कि मैं अपनी बलरूपी वह शक्ति जिससे तीनों लोक कंपायमान हो जाते हैं, तुम्हारे पुत्र को प्रदान करुँगा।जन्म के समय इनका नाम मारुति रखा गया। यह माना जाता है कि भगवान शिव ने पृथ्वी पर मनुष्य के रूप पुनर्जन्म 11वें रुद्र अवतार के रूप में हनुमान वनकर जन्म लिया; क्योंकि वे अपने वास्तविक रूप में भगवान श्री राम की सेवा नहीं कर सकते थे। मारुति को भूख लगी लेकिन कुछ खिलाने-पिलाने के लिये अंजना माता घर पर नहीं थी।

उसी समय उदयाचल से उदित हो रहे अरुणाभ सूर्य को मारुति ने मीठा फल समझ लिया। वे तुरन्त आकाश में उड़े और सूर्य तक पहुँच गए। मारुति को सूर्य की ऊष्मा से बचाने के लिये पवनदेव उसी समय भी पीछे-पीछे चल रहे थे। राहु भी अपनी सेना सहित वहाँ पहुँच गया। मारुति ने इसे भी मीठा फल समझ लिया और उस पर लपके। राहु शिकायत करने इन्द्रदेव के पास पहुंच गया। इस बीच मारुति ने राहु की राक्षसी सेना का अन्त कर दिया। मारुति ने सूर्य को मीठा फल समझ कर अपने मुख में रख लिया। इन्द्र ने मारुति पर वज्र से प्रहार किया तो वे मूर्छित हो गये।

यह देखकर पवनदेव को क्रोध आ गया। उन्होंने तुरन्त प्राणवायु का संचार बंद कर दिया। चारों ओर हाहाकार मच गया। ब्रह्माजी सभी देवताओं के साथ पवनदेव के पास पहुँचे। उन्हांने मारुति को स्पर्श किया तो उन्हें होश आ गया। मारुति को बाल्यावस्था में ही इन्द्र, कुबरे यम, वरुण, ब्रह्मा आदि देवताओं ने अनेकों वरदान दियेऔर आशीर्वाद दिया कि तुम पर सभी अस्त्र -शस्त्र प्रभावहीन रहेंगे। देवताओं ने इन्हें इच्छा मृत्यु का वरदान भी दिया। सूर्यदेव ने गुरु बनकर विद्याज्ञान देने का वचन दिया। ब्रह्माजी ने पवनदेव से कहा, 'तुम्हारा पुत्र शत्रुओं पर हमेशा भारी पड़ेगा, युद्ध में अजेय रहेगा। श्रीराम-रावण युद्ध में अपना शौर्य दिखा कर श्रीराम को अति प्रसन्नता प्रदान करेगा।'

बाल-लीला करते समय मारुति ने राहु की सेना और साठ हजार मंदार नाम के राक्षसों का भी संहार कर दिया। इसलिये इनका एक नाम 'राक्षसान्तक' भी है। इन्द्र के वज्र प्रहार से मारुति की हनु (जबड़ा) टेढ़ी

हो गई। हनु वक्र हो जाने से इनका नाम हनुमान हो गया। ऐसे कार्य जो मनुष्य को ब्रह्म से विमुख करते हैं, उनका हनन कर सही मार्ग की ओर अग्रसर करने वाले को भी हनु (एक अर्थ– हनन करने वाला) कहते हैं। अपनी इस विशेषता के कारण भी ये हनुमान हैं।

पाँच वर्ष की अल्प आयु में हनुमान विद्या अध्ययन के लिये अपने गुरु सूर्यदेव के पास पहुँच गए। सूर्यदेव ने मन में बालकों का खेल समझ कर बहाना किया। उन्होंने हनुमान से कहा, 'मेरा तेज बहुत प्रचंड एवं असहनीय है। पीठ के पीछे बैठा कर शिक्षा नहीं दी जा सकती है। मेरे रथ में तुम्हारे बैठने के लिये प्रचुर स्थान उपलब्ध नहीं है। शिष्य तो गुरु के चरणों में बैठा हुआ ही अच्छा लगता है। लेकिन स्थानाभाव के कारण यह सम्भव नहीं है।'

प्रखर बुद्धि हनुमान को कहना पड़ा, 'गुरुदेव आपका वेग तो मेरे एक कदम के बराबर है।' मैं आपको अपनी पीठ नहीं दिखाऊँगा। हनुमान ने भास्कर की ओर मुख करके पीठ की तरफ पैरों से प्रसन्नमन आकाशमार्ग में बालकों के खेल के समान गमन किया। मैं पीछे-पीछे पैर रख कर सदा आपके सन्मुख ही बना रहूँगा। आप कहते हैं कि आपका तेज असहनीय है, इसे मैं हर लूँगा और आप मेरे तेज से प्रकाशमान रहेंगे। हनुमान ने चौदह विद्याएँ चौदह दिन में सीख ली। इससे सूर्यदेव का तेज कम हो गया। गुरुशिष्य से प्रश्न पूछते थे लेकिन शिष्य द्वारा दिये गये उत्तर को समझ नहीं पाते थे। सूर्यदवे सोचने लगे, इस चंचल वानर को विद्या प्रदान करने का वचन मैंने क्यों दिया होगा? अन्ततः सूर्यदेव ने श्रीहरि से विनती की, मेरे गुरु-पद की लाज अब आपके हाथ में है। श्रीहरि ने हनुमान को समझाया कि गुरु को पूरा सम्मान दो, शास्त्रों की मर्यादा रखो। तुम्हारी विद्या को इस संसार में लुप्त करने वाला न कोई है और न कोई होगा। अपनी शिक्षा को जारी रखो। पुनः अपने गुरु के पास जाओ, उनकी मर्यादा का सम्मान करो। इस तरह श्रीहरि ने गुरु और शिष्य के बीच समन्वय स्थापित करा दिया। हनुमान ने अठ्ठारह मास तक अपने गुरु से शिक्षा ग्रहण की। इस अवधि में अपने गुरु को पूर्ण सम्मान दिया। गुरु की मर्यादा और सम्मान का पूर्ण खयाल रखा। हनुमान ने जिस आश्चर्यपूर्ण तरीके से विद्याध्ययन किया वह वास्तव में तीनों लोकों को चकित कर देने वाला है।

शिक्षा ग्रहण के इस अचरज भरे खेल को देखकर इन्द्रादि लेकपाल, विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा की आँखें चौंधिया गई। शिक्षा पूर्ण होते ही हनुमान ने विनम्र होकर अपने गुरु से गुरु-दक्षिणा माँगने के लिये निवेदन किया तो सूर्यदेव ने कहा, 'मेरा पुत्र सुग्रीव वानररूप में तुम्हें मिलेगा। जब तक उसे प्रभु श्रीराम नहीं मिलें तब तक तुम उसकी रक्षा करना।'

अपने गुरु की आज्ञा को हनुमान ने पूर्ण सम्मान प्रदान करते हुए आगे चल कर वानरराज सुग्रीव को भी पूर्ण सम्मान प्रदान किया, उनकी रक्षा की और उन्हें ब्रह्म से मिलाकर हमेशा के लिए भयमुक्त भी किया।

हनुमान बचपन में बहुत चंचल थे और ऋषि-मुनियों के आश्रम में जाकर उन्हें बहुत परेशानकरते थे। उनकी इस चंचलता से माता-पिता भी बहुत परेशान थे। दण्ड के रूप में अंगिरा और भृगुवंशियों ने हनुमान को अपनी शक्तियाँ दीर्घकाल तक भूलने का शाप दे दिया। साथ ही यह भी अवगत करा दिया कि यदि कोई तुम्हें तुम्हारी शक्तियों का स्मरण करायेगा तो शक्तियाँ पुनः प्राप्त हो जायेंगी।

भृगु ऋषियों द्वारा दिये गये इस शाप की जानकारी केवल जामवंतजी को ही थी। इस शाप के बाद हनुमानजी का व्यवहार बहुत ही सौम्य और शिष्ट हो गया।

सुग्रीव के सचिव पद से ही प्रारम्भ होती है हनुमान चरित्र की यात्रा। यहीं इन्होंने अपने स्वामी श्रीराम को पहचाना और उनके दास बन गये। जामवंत हनुमान से

“'हे बलवान! क्या चुप साध रखी है, पवनपुत्र हो, बल में पवन के समान हो, बुद्धि, विवेक और विज्ञान की खान हो। श्रीराम के कार्य के लिये तुम्हारा अवतार हुआ है। जगत में ऐसा कौन-सा कठिन काम है जो तुमसे न हो सके।'

कहते हैं— 'हे बलवान! क्या चुप साध रखी है, पवन पुत्र हो, बल में पवन के समान हो, बुद्धि, विवेक और विज्ञान की खान हो। श्रीराम के कार्य के लिये तुम्हारा अवतार हुआ है। जगत में ऐसा कौन सा कठिन काम है जो तुमसे न हो सके।'

यह सुनकर हनुमानजी पर्वत के आकार के अत्यन्त विशालकाय हो गये। जामवंत के मार्गदर्शन ने हनुमानजी की लघुता को प्रभुता में सुप्तावस्था से जाग्रत अवस्था में आ गयीं। उन्होंने अपने शरीर को विशाल आकार में परिवर्तित कर दिया। हनुमानजी की सभी शक्तियाँ हनुमानजी, श्रीरामजी के दास्यभक्ति रस में ऐसे डूबे कि स्वयं भगवान श्रीराम हनुमानजी के कृतज्ञ होकर स्वयं को उनका आजीवन ऋणी मान बैठे।

हनुमान राक्षसान्तक हैं मनुष्यान्तक नहीं, इसका उदाहरण महाभारत का युद्ध है। हनुमान अर्जुन के रथ की ध्वजा पर बैठे हैं, गुरु द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह के शस्त्र प्रहारों से पाण्डव सेना भयभीत है। हताश-निराश अर्जुन, हनुमान से कहते हैं, 'आप इनके अस्त्र-शस्त्रों से इतने भयभीत क्यों हैं? 'हनुमान कहते हैं,' कौरवों की सेना में वीर तो हैं पर ऐसे वीर नहीं हैं जिनसे मैं युद्ध कर सकूँ। मेरी गर्जना को सुन कर तीनों लोकों के राक्षस काँपने लगते हैं। इस युद्ध में वीर तो हैं परराक्षस नहीं हैं। मनुष्यों पर बल प्रयोग और अपना पराक्रम प्रकट करने में बहुत संकोच हो रहा है। क्योंकि मैं मनुष्यान्तक नहीं हूँ।'

'भारत' में पारथ के रथकेतु कपिराज

हनुमानजी ने भीषण गर्जना करने से मना कर दिया। उन्होंने कहा, 'मैं अपनी किलकारी को भीम की गर्जना में मिला दूँगा। मेरी किलकारी का असर कौरव सेना पर ही होगा। आसपास में रह रहे अन्य सभी प्राणी -भयमुक्त बने रहेंगे।' हनुमान की किलकारी और भीम की गर्जना से कौरव सेना मूर्छित हो गयी। मूर्छा अर्जुन को भी आयी लेकिन उन पर हनुमानजी की कृपादृष्टि थी इसलिये बेहोश नहीं हुए। हनुमानजी ने कहा, 'हे अर्जुन! मैं कौरवों की सेना पर प्रहार नहीं करूँगा। मैं भीम की गर्जना और तुम्हारे गाण्डीव की टंकार के साथ अपनी किलकारी मिला दूँगा जिससे कौरव सेना भयभीत हो जायेगी और तुम आसानी से उनका संहार कर सकोगे।'

हनुमान दिव्य अस्त्रों से अर्जुन की रक्षा करते रहे। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण जैसे महान् वीरों को भी कहना पड़ा, 'हे पवनसुत! हमारी रक्षा करो।' अन्ततः पाण्डव विजयी हुए। यदि हनुमानजी नहीं होते तो पाण्डवों की हार सुनिश्चित थी। हनुमानजी ने कौरव सेना पर प्रहार नहीं किया, किसी भी मनुष्य का संहार नहीं किया, क्योंकि हनुमान राक्षसान्तक हैं मनुष्यान्तक नहीं।

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को भी हनुमानजी का जन्म महोत्सव मनाया जाता है। लंका विजय के बाद जब श्रीराम अयोध्या लौटे तो उनके साथ वानर भालू भी थे। अयोध्या से विदा करते समय सीता-माता ने इन्हें यथायोग्य पारितोषिक दिये तथा पूर्वोत्तर भारत के

रामायण के संस्करण के अनुसार तो सीता माता ने हनुमान को देवत्व प्रदान करते हुए कहा कि जहाँ जहाँ तेरा नाम लिया जायेगा, वहाँ से सभी भय दूर रहेंगे। सीतामाता ने अपनी रत्नजड़ित मोतियों की बहुमूल्य माला हनुमानजी को दी। इस माला के मोतियों में रामनाम नहीं था। वे इस पारितोषिक से संतुष्ट नहीं हुए। वे मणियों को तोड़ते और फेंक देते। वहाँ उपस्थित समुदाय को यह अनुचित लगा। उनका कहना था, ब्रह्मचारी हैं इसलिये मणियों का महत्त्व नहीं समझते। माला तोड़ कर जनकनन्दिनी का अपमान कर रहे हैं। ज्ञानिनामग्रगण्य हैं लेकिन कपि-संस्कार नहीं छूट सकता।

इनके बारे में जो कुछ भी कहा जा रहा था वह विभीषणजी को अच्छा नहीं लगा। विभीषणजी ने उनका हाथ पकड़ कर कहा, 'बहुमूल्य मणिमाला को क्यों तोड़ रहे हो?' हनुमान ने कहा, 'यह माला आपके लिये बहुमूल्य हो सकती है मेरे लिये नहीं। जिसमें रामनाम नहीं हो वह मेरे लिये व्यर्थ है।'

सभी ने आश्चर्य से उनकी ओर देखा तो उन्होंने अपने नखों से अपने वक्षःस्थल को विदीर्ण कर उपस्थित समुदाय को अपने हृदय में राम-लक्ष्मण और सीता के साक्षात् दर्शन करा दिये। आश्चर्यचकित होकर सभी ने एक स्वर में श्रीरामोपासक हनुमान का जयघोष किया। हनुमानजी के चेहरे पर निराशा के भाव देख कर सीता माता ने अपने ललाट पर लगा सौभाग्य का प्रतीक इन्हें देते हुए कहा, 'इससे बढ़कर बहुमूल्य वस्तु मेरे पास नहीं है। इसे सहर्ष स्वीकार कर धारण करो और सदैव अजर-अमर रहो।

इसलिये कुछ लोग कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को भी इनका जन्मोत्सव मनाते हैं व इन्हें सौभाग्य का प्रतीक सिंदूर एवं तेल चढ़ाते हैं। सीता-माता पूजा-पाठ करके बाहर निकली तो हनुमान ने उन्हें प्रणाम किया। माँ ने आशीर्वाद दिया तो वे माँ के मुख को निहारने लगे। उन्हांने माँ की माँग में सिन्दूर की लाली देखी तो जिज्ञासावश पूछ लिया, 'माँ आपकी माँग में यह लाली क्यों ? 'माता ने हँस कर कहा, 'तुम ब्रह्मचारी हो इसलिये समझ नहीं सकोगे। यह प्रत्येक नारी के लिये सौभाग्य का प्रतीक है। इससे तुम्हारे प्रभु प्रसन्न होते हैं। माँग में सिन्दूर लगाने से स्वामी दीर्घायु होते हैं।'

हनुमानजी ने मन ही मन सोचा जब माँ की इतनी-सी सिन्दूर लालिमा से प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं, दीर्घायु हो जाते हैं तो इसे पूरे शरीर पर लगाने से प्रभु का असीम प्रेम मिल सकता है। प्रभु का असीम अनुग्रह पाने के लिये व उनकी दीर्घायुष्य कामना के लिये इन्हांने अपने सारे शरीर में सिंदूर पोत लिया। जब श्रीराम ने हनुमान को देखा तो कहा, 'तुम्हारा यह भेष मुझे अच्छा लगा।' हनुमान उनके चरणों में गिर कर बोले, 'प्रभु ऐसे ही शरारत सूझ गई थी।' प्रभु श्रीराम ने उनके मस्तक पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया और अपने भक्त के भोलेपन को देख कर कहा, 'बहुत रुचिकर लग रहा है तुम्हारा यह स्वरुप।'जनक नन्दिनी भी उन्हें देख कर मुस्कुरायी और आशीर्वाद देते हुए बोली, 'अच्छे लग रहे हो।' हनुमानजी का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। तभी से इनका एक नाम "सिन्दूरारुण विग्रह" भी है। हनुमानजी अजर-अमर हैं। वर्तमान काल में 28वें महायुग के सत्य त्रेता और द्वापर बीत कर 28वां कलयुग चल रहा है। इस कलयुग में "रबि बालबरन-तनु" उदयकाल के सूर्य के समान लाल देहधारी हनुमान अदृश्यरूप में रहते हुए यहाँ-वहाँ विचरण करते रहते हैं। जहाँ-जहाँ रामकथा होती है वहाँ ये अवश्य जाते हैं, क्योंकि ये रामकथा से कभी तृप्त ही नहीं होते हैं। अदृश्य रह कर ही ये अपने भक्तों की सहायता करते रहते हैं।

***

श्रद्धाञ्जलि

एक मनीषी पं. गोविन्द झा का महाप्रयाण

दिनांक 18 अक्टूबर, 2023ई. की रात्रि 10:30 पर पण्डित गोविन्द झा का देहावसान उनकी 101वें वर्ष की अवस्था में हुआ। वे वैयाकरण, साहित्यकार, लिपिशास्त्री, सम्पादक, अनुवादक तथा विशेष रूप से भाषा वैज्ञानिक के रूप में प्रतिष्ठित रहे। इनके निधन से बिहार ने प्राचीन तथा आधुनिक ज्ञान-परम्परा के संगम स्वरूप एक मनीषी को खो दिया है। महावीर मन्दिर तथा 'धर्मायण' पत्रिका परिवार की ओर से ऐसे मनीषी को नमन एवं श्रद्धाञ्जलि!!

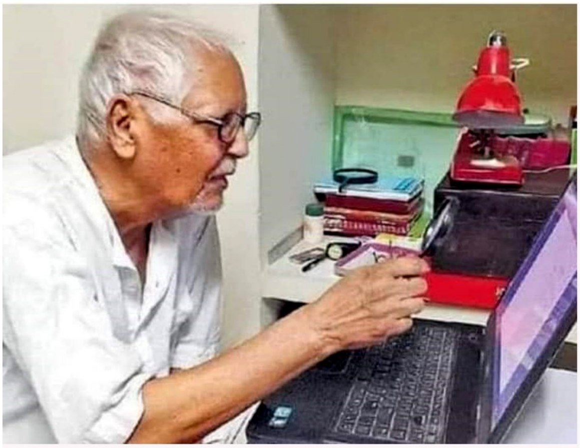

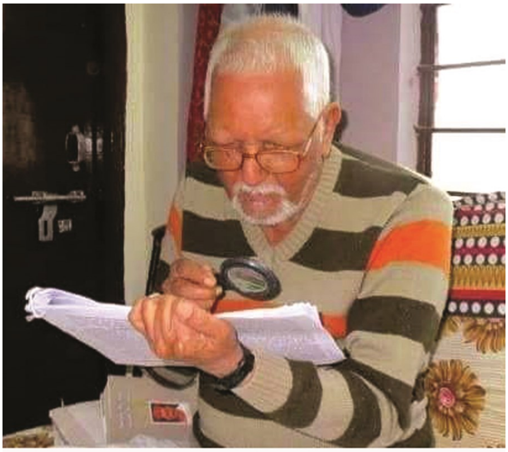

धर्मायण में प्रकाशित आलेख

एक प्रच्छन्न भक्त का पुण्य स्मरण	अंक 72
कुछ धार्मिक शब्द और उनके आशय	अंक 75
राष्ट्रीय पंचांग, जिसे हम भूल गये	अंक 78
कुछ धार्मिक शब्द और उनके आशय	अंक 119
राष्ट्रीय पंचांग जिसे हम भूल गये	अंक 128

पं. गोविन्द झा द्वारा संस्कृत से अनुवाद

महावीर मन्दिर से प्रकाशित **दुर्गासप्तशती** में **शंकराचार्य कृत अम्बाष्टक** एवं **पद्यपुष्पाञ्जलि/ महिषमर्दिनीस्तोत्र/ संकटास्तुति** का संस्कृत से हिन्दी अनुवाद प्रकाशित है।

पं. गोविन्द झा को महावीर मन्दिर द्वारा 2006ई. में सम्मान

महावीर मन्दिर द्वारा 2006ई. में गीता जयन्ती के अवसर पर पं. गोविन्द झा को संस्कृत व्याकरण एवं भाषाविज्ञान में उनके योगदान के लिए सम्मानित किया था।

गोविन्द झा का जीवनवृत्त

नाम - गोविन्द झा, पिता दीनबन्धु झा, माता यागेश्वरी देवी, पत्नी सीता देवी।

जन्मतिथि - 10.10.1923 (दस अक्टूबर उन्नीस सौ तेईस)।

जन्मस्थान - गाँव सनकोर्थु, मशहूर इसहपुर, डाकघर सरिससब-पाही, जिला मधुबनी, विहार।

निवास - 104 सती चित्रकूट एपार्टमेंट्स, गंगा पथ, पटेल लगर, पटना, बिहार, 800 023।

सम्पर्क - 947186690।

जीवनचरित का सीडी — साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली।

शिक्षा - लक्ष्मीवती संस्कृत विद्यालय, सरिसब, मधुबनी, बिहार। गुरु महावैयाकरण दीनबन्धु झा तथा पं. मधुसूदन मिश्र।

डिग्री - बिहार संस्कृत समिति से व्याकरणाचार्य, 1947, बिहार विश्वविज्यालय से बी.ए. हिन्दी मे, 1948, आइ.ए अंग्रेजी में 1951, बिहार संस्कृत समिति से साहित्याचार्य, 1952, वेदाचार्य, 1954।

भाषा - मैथिली (मातृभाषा), संस्कृत, हिंदी और अँग्रेजी में प्रवीणता। साधारण ज्ञान बंगला, असमिया, ओडिया, नेपाली, उर्दू।

सेवा - (1) शब्दकोश-सहायक, न्यूज पेपर्स ऐंड पब्लिकेशन्स प्रा. लि. पटना, 1950। (2) शब्दावली सहायक, उपनिदेशक, राजभाषा विभाग, बिहार सरकार, 1951-1978। (3) उपनिदेशक, मैथिली अकादमी, पटना, 1978-85। (4) पुस्तकाध्यक्ष, सुलभ इंटरनेशनल, पटना-दिल्ली, 1986-88.

संगोष्ठी — (1) अनुवाद कर्मशाला, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1951-52। (2) इंडिअन एयर लाइन्स, ईस्टर्ल जोन, भारतीय लिपि, पटना, 1982। (3) लिपिशक्षण कर्मशाला, तिब्बतन इन्स्टच्यूट, सारनाथ, 1992। (4) मैथिली भाषा के विकास की कार्ययोजना, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर, 2004।(5) मैथिली शिक्षण पुस्तक रचना कर्मशाला, भुवनेश्वर, 2006।

मीट दि ऑथर — साहित्य अकादेमी, कोलकाता, 2001।

सम्मान — (1) साहित्य अकादेमी पुरस्कार, 1993। (2) साहित्य अकादेमी अनुवाद पुरस्कार, 1993। (3) कामिल बुल्के पुरस्कार, बिहार सरकार, 1988। (4) ग्रियर्सन पुरस्कार, बिहार सरकार, 2001। (5) चेतना समिति सम्मान, पटना, 1989। (6) विशिष्ट पंडित सम्मान, दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, 2009। (7) प्रबोध साहित्य सम्मान, 2005।

अभिनन्दन ग्रन्थ — पंडित श्री गोविन्द झा अर्चा ओ चर्चा, पटना, 1997.।

रचनाएँ — देखें संलग्न सूची।

पं. गोविन्द झा की रचनाएँ

1. मालविकाग्निमित्र — संस्कृत से अनूदित, मैथिली साहित्य परिषद्, दरभंगा 1944.

2. बसात — नाटक, दरभंगा प्रेस कं. दरभंगा, 1954.
3. मैथिली छन्दशास्त्र - दरभंगा प्रेस कं., दरभंगा, 1960
4. लघुविद्योतन - मैथिली व्याकरण, दरभंगा प्रेस कं., दरभंगा, 1963.
5. मैथिलीक समस्या — विवेचन, चेतना समित, पटना 1968
6. मैथिलीक उद्गम ओ विकास — मिथिला सांस्कृतिक परिषद् कोलकाता 1968
7. वातावरणम्- मूल बसात, अनुवादक, शशिनाथ झा, संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, 1970
8. व्याकरण-रचना-विजय - भारती भवन, पटना, 1971
9. अपन घर अपन लोक, सहलेखक गोपालज झा ओ बदरी दास, भारती भवन, पटना, 1971
10. अपन घर अपन पाठशाला,
11. अपन घर अपन समाज,
13. अन्तिम प्रणाम - नाचक चेतना समिति, पटना, 1973
14. मैथिली भाषा का विकास — हिन्दी ग्रन्थ अकादेमी, पटना 1973
15. राजा शिवसिंह — नाटक, उर्वशी प्रकाशन, पटना 1973
16. विभागसार — धर्मशास्त्र, विद्यापतिकृत, सम्पादन, मैथिली अगादमी, पटना, 1979.
17. उच्चतर मैथिली व्याकरण - मैथिली अगादमी, पटना, 1979
18. वर्णरत्नाकर — व्याख्या और सम्पादन, मैथिली अगादमी, पटना, 1980
19. विद्यापति-गीतावली — सम्पादन, मैथिली अगादमी, पटना, 1981
20. गोविन्ददास — जीवनी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1982
21. चण्डीदास — जीवनी, मूल सुकुमार सेन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1983
22. उमेश मिश्र — जीवनी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1983
23 मैथिली नाटक अधुनातन सन्दर्भ — समीक्षा, मैथिली अगादमी, पटना, 1988
24. पूर्वकालीन भारतीय समाज — इतिहास, मूल राम शरण शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, पटना 1985
25. पूर्वांचलीय गीति-साहित्य — सम्पादन, चेतना समिति, पटना, 1989
26. सामाक पौती — कथा-संग्रह, भाखा प्रकाशन, पटना, 1990
27. रुक्मिणी-हरण — नाटक, चेतना समिति, पटना, 1990
28 प्राचीन भारत — इतिहास, अनुवाद, मूल राम शरण शर्मा, एनसीईआरटी, नई दिल्ली, 1990
29. नेपाली साहित्यक इतिहास — अनुवाद, साहित्य अकीदेमी, नई दिल्ली, 1991
30. कीर्तिलता — मूल विद्यापति, सम्पादन, मैथिली अकादमी, पटना, 1992
31. कीर्तिपताका — मूल विद्यापति, सम्पादन डॉ. शशिनाथ झा के साथ, नाग प्रकाशक, दिल्ली 1992 32. विद्यापतिक आत्मकथा — ऐतिहासिक उपन्यास, अखियासल प्रकाशन, पटना, 1992
33. शिखरिणी — समीक्षा, सम्पादन, चेतना समिति, पटना, 1992
34. मैथिली शब्दकोश — मैथिली अकादमी, पटनी, 1993
35. भनइ विद्यापति — विद्यापतिक आतमकथा का हिन्दी अनुवाद तारानन्द वियोगी, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1893
36. नखदर्पण — कथा संग्रह, शेखर प्रकाशन, पटना, 1995
37. पाताल भैरवी — असमिया उपन्यास का अनुवाद, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1997
38. मैथिली-अंग्रेजी कोश - कल्याणी फाउंडेशन, दरभंगा, 1999

39. गोविन्ददास – जीवनी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1999
40. अओ बाबा की बौआ – बालकथा, असमिया से अनूदित, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2000
41. प्रलाप – कविता-संग्रह, नन्दन प्रकाशन, पटना, 2001
42. भूषणसारदीपिका – संस्कृत शब्दशास्त्र भूषणसार की संस्कृत व्याख्या, आंशिक योगदान, मिथिला संस्कृत विद्यापीठ, दरभंगा, 2002
43. आत्मालाप – सरस इतिहास, अखियासल प्रकाशन, पटना, 2002
44. झाँपि– सामाक पौती का बंगला अनुवाद, गौरी मिश्र, साहित्य अकादेमी, कोलकाता, 2003
45. भाषा आ समाज – सम्पादन, चेतना समिति, पटना, 2003
46. पाणिनीयं शब्दानुशासनम्, हृद्या व्याख्या– संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, 2004
47. अतीतालोक – निबम्ध-संग्रह, अखियासल प्रकाशन, पटना, 2004,
48. लिंग्विस्टिक इनफॉर्मेशन –अंग्रेजी-मेंथिली, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर, 2005
49. कीर्ति-किरण – सम्पादन, साहित्यिकी, सरिसब-पाही, मधुबनी, 2006
46. मैथिली परिचायिका – भाषा-शिक्षण, शेखर प्रकाशन, पटना, 2006
50. मैथिली परिशीलन – व्याकरण-सह-भाषाविज्ञान, मैथिली अकादमी, पटना, 2007
51. नखदर्पण – हिन्दी अनुवाद, प्रतिमा पांडेय, सरस्वती प्रेस, पटना, 2009
52. गोविन्ददास – जीवनी, हिन्दी अनुवाद प्रेम शंकर सिंह, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2009
53. जनम अबधि हम – आत्मकथा, नवारम्भ प्रकाशन, पटना, 2010
54. कहानी विदेह जनपद की – आत्मालाप का हिन्दी अनुसर्जन, योगेन्द्र प्रसाद मिश्र, नवारम्भ प्रकाशन, पटना, 2010
55. अनुचिन्तन – निबन्ध-संग्रह, नवारम्भ प्रकाशन, पटना, 2010
56. जयकान्त-जयन्तिका – स्मृतिग्रन्थ, सम्पादन, शेखर प्रकाशन, पटना, 2010
57. गीत दीनाभद्रीक ओ गीत नेबारक – मैथिली अनुवाद, मूल ग्रियर्सन, सम्पादक रमानन्द झा रमण, अखियासल प्रकाशन, 2010
58. भाषाशास्त्र-प्रवेशिका – दीनबन्धु प्रकाशन, पटना, 2011
59. विद्यापति शब्दकोश (अवहट्ठ खंड) – बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 2012
60. ग्रियर्सनकृत मैथिली व्याकरण - अनुवाद, सम्पादक रमानन्द झा, चेतना समिति, पटना, 2012
61. बांला-मैथिली अभिधान– बंगला-मैथिली शब्दकोश, साहित्य अकादेमी, कोलकाता, 2012,
62. विद्यापति-गीत-समग्र – सम्पादन और अनुवाद, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर, 2012
63. मिथिलाक सामाजिक इतिहास – साहित्यिकी प्रकाशन, सरिसब-पाही, मधुबनी, 2013.
64. श्रोत्रिय समाज आ पाण्डित्य-परम्परा – अखियासल प्रकाशन, लालगंज, 2014
65. नवरंग, साहित्यिकी, 2015
66. सात रेखा सात रंग साहित्यिकी, 2015
67. विद्यापतिकृतं गयापत्तलक, व्याड़ीभक्तितरंगिणी तथा वर्षकृत्यम्

तीन पुस्तक प्रकाशनाधीन

1, विज्ञान-कोश, वाणी प्रकाशन
2. हिन्दी-मैथिली कोश, मैसूर
3. तुलनात्मक व्याकरण, चौखम्बा

अप्रकाशित कृति

1. अभिज्ञानशाकुन्तल —सरलीकृत चारिम कधरि
2. सीरध्वज काव्य अपूर्ण
3. चित्रांगदा मै., अनु. पूर्ण
4. स्वप्नवासवदत्त मै. अनु. मैथिली अकादमी मे प्रकाशनाधीन
5. वीरागना बंगला सँ मैथिली
6. को दात् कस्मा अदात् — संस्कृत कथा।
7. ढोलक कथा, हिंदी मासिक कहीनी मे प्रकाशित
8. पहला विवाह ततिरैव प्रकाशित
9. स्टोरी ऑफ द बोट ऐंड कार्ट
10. आब अपूर्ण कथा
11. शरण अपूर्ण कथा
12. दही मे मूसर कथा
13. मुक्ति कथा
14. कुकुर सँ सावधाल ओड़िआ कथाक अनुवाद
5. हमर इसकुल तोहर इसकुल (नाटिका)
16. कालकूट नाटक पूर्ण
17. अतिथिदेवो भव कथा
18. मुक्ति कथा
19. दही मे मूसर तथा
20. मनुष्यक मूल्य
21. रूदल काका एकांकी
22. मोछसंहार
23. बरदेखी
24. उपचार
25. सौभाग्यम् संस्कृत कथा
26. एकदा नारदो योगी
27. दौड़ि चली, ठेसि खसी कथा
28. मैथिली साहित्य का परिचय
29. रमानन्द रेणुक भाषा
30. इंडिअन लिटरेरी सीन ए हेजी रिफ्लेक्शन
31. समकालीन कविताक भाषा
32. मैथिली कतेक भारतीय कतेक नेपालीय
33. रचना प्रक्रिया
34. कनेक अपन मुह तँ गेखल जाए सामाजिक
35. नागार्जुन और इनकी मातृभाषा
36. बिहारक भाषिक परिदृश्य मे कतए अछि मैथिली।
37. जयदेव ओ अभिनव जयदेव
38. भीमनाथक कविचूड़ामणिक काव्यसाधना केर समीक्षा
39. शतक पर्व रमानाथ झाक
40. मैथिली भाषाक संग अन्य भाषाक अन्त:सम्बन्ध
41. मैथिली नाटक आरम्भ सँ अन्त तक
42. पंजी प्रथाक उद्भव ओ विकास
43. कतेक दीर कतेक लग, मायानन्द मिश्रक स्मृति मे
44. मिथिलाक्षरक प्रसंग किछु विवेचन
45. रवीन्द्रजयन्तीक अवसर पर भाषँ
46. रजभाषाक सरलीकरण (देखू 61)
47. कलम उठएबा सँ पहिने
48. मैथिली आ कोङ्कणी
49. अंगिकाक प्रसंग चकोर सँ साक्षात्कार
50. मैथिलीक एक प्रच्छन्न सेवक उमापति सिंह
51 गृहस्थरत्नाकरक भूमिका
52. मीट द ऑथरक भाषण
53. विद्यापतिक रूप
54. विद्यापतिक एक गीतक पाठोद्धार
55. अभिनन्दनोत्तर कृतज्ञता
56. संसकृते पर्यायवाचिवाहुल्यम्
57. तोहर सदृश एक (यन्त्रनाथक कथा)
58. उदयनाचार्य एक परिचय, रेडिओ
59. विसरए चाहिअ योगेन्द्र प्रसादक शोकोद्गार
60. हिन्दी में लेकभाषा का अवदान
61. प्रबोधसम्मान, कृतज्ञता

62. ते हि नो दिवसा गताः श्रीकान्त-संस्मरण
63. कारकमधिकृत्य केचन विचाराः
64. हर्षदेव माधव — समीक्षा
65, गङ्गानाथचरितम्
66, विद्यापतिक प्रसंग किछु विचारणीय प्रसंग
69. हरिमोहन झाक आँखि
70. मैथिली महाभारतक उग्रासपर्व — लो, से. आयो
71. विद्यापति संगीत
72. पंडित काश्मीरक आ मिथिलाक
73. मिथिलाक्षर एक मृगमरीचिका
74. कुछ धार्मिक शब्द
75. भारतीय चिन्तन में मिथिलाक योगदान
76. Sanskrit drama in Maithili
77. नामार्थ के विषय में
78. पुरा यत्र स्रोतः, हर्षदेव माधव
79. अष्टाध्याय्याः सरलीकरणम्
80. New Light on the Karnata Kings
81. Metre in Maithili Ramayana
82. वर्णक्रमिक विन्यास
83. कलम उठएबा सँ पहिने
84. कालिन्दीक पत्र
85. एकोऽहं बहु स्याम
86. अकादमी पुरस्कार कृतज्ञता
87. मैथिलीक मासिक पत्रिका
88, विद्यापतिक गीतक पाठोद्धार
89. राँटी मे बीजभाषण
90. विद्यापति की भाषा
81. संस्कृत नाटकक संरचनात्मक स्वरूप
92. कतेक डारि पर — समीक्षा

***

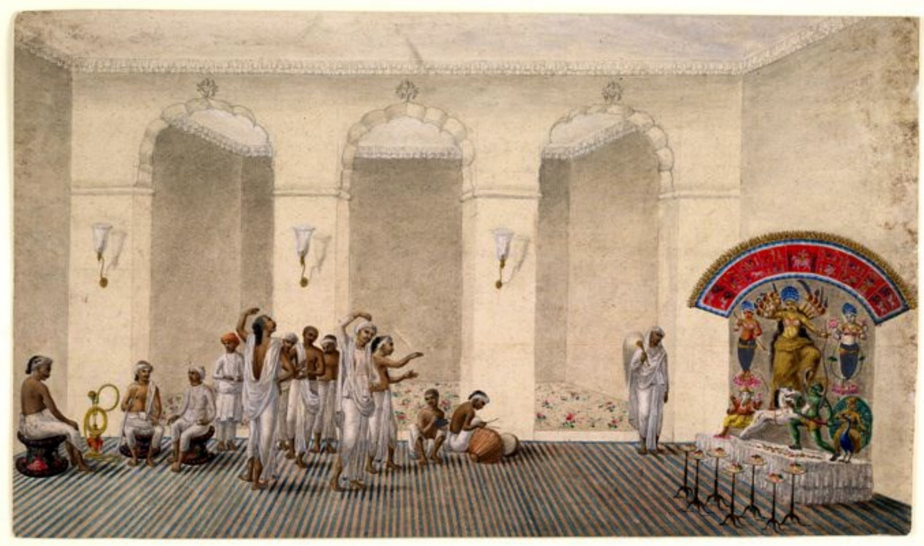

यह 1809ई. में निर्मित पटना की दुर्गापूजा की चित्र है। इसमें हम देख सकते हैं कि एक ही दरी पर देवी की मूर्ति के सामने सबसे आगे बाँस की कपचियों से ढ़ोलक बजाने वाले दो व्यक्ति अपने कार्य में व्यस्त हैं। इसी समुदाय के लोगों को आज मन्दिर में प्रवेश न करने देने की बात उछाल कर सनातन धर्म पर उँगली उठायी जाती है। इन 200 वर्षों में क्या बदलाव हुआ है यह विचारणीय है।

पाठकीय प्रतिक्रिया का शेष अंश (पृ. 2 से)

आचार्य किशोर कुणाल जी ने अपने आलेख में श्राद्ध की सैद्धांतिक भूमिका का शास्त्रीय विवेचन कर आत्मा को नित्यता को पारिभाषित किया है।

डा सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य जी ने अपने आलेख में "त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता" के शीर्षक को अपने दार्शनिक अंदाज में बड़ी सरलता से समझाने का प्रयास किया है। उन्होंने देव, ऋषि और पितृ ऋण को समझाते हुए इन तीनों के प्रति मनुष्य के कर्तव्यों की ओर संकेत दिया है कि इनकी प्रसन्नता के लिए हमें शास्त्रीय संविधान का पालन तो करना ही होगा। अन्यथा ये दोष हमारा पीछा कभी नहीं छोडेंगे। इस अंक में श्रीकृष्ण जुगनू, श्रीमती ममता दास, डा राधाकृष्ण झा, डा कैलास जी आदि विद्वानों के विद्वतापूर्ण व ज्ञानवर्धक आलेख अनुकरणीय हैं। हम सभी विद्वानों को समवेत रूप से प्रणाम करते हैं।

–पंडित शम्भुनाथ शास्त्री वेदान्ती, भागलपुर।

इस बार की प्रकाशित प्रतिष्ठित 'धर्मायण' विशेष रूप से शोधता को प्राप्त कर रहा है॥ शताधिक पूर्व भी अनेक बार श्राद्ध कर्म पर दयानन्दियों से सनातनी विद्वद्वरेण्यों का सनातन विजयी शास्त्रार्थ हो चुका है। जिसका लिखित रूप भी उपलब्ध है। तदनुरूप ही सद्यः प्रकाशित प्रतिष्ठित पत्रिका पूर्ण उच्च स्तरीयता को प्राप्त कर रही है। इसका पूर्ण श्रेय सनातन निष्ठावान् पूज्य भवनाथ झा जी को ही प्राप्त है।

ये अपने सहयोगी लेखकों को भी पूर्ण उदात्त भाव से सहयोग करते हैं। एतदर्थ अनन्त अनन्त नमन। श्राद्ध शब्द सम्पूर्ण रूप से समन्ततः शास्त्र विहित पितृकर्मवाचक है। अमरकोश द्वितीय काण्ड ब्रह्म वर्ग 7.31 के अनुसार श्राद्धं तत्कर्म शास्त्रतः। सुधा व्याख्याकार आह= शास्त्रविधानेन पितॄणां कर्म। शास्त्र विधान से पितृ कर्म सम्पादन श्राद्ध है। पितृकर्म= प्रेतान् पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिचक्षते। यही श्राद्ध है। अमरकोश के अनुसार उक्त विहित सम्पूर्ण कर्म को श्राद्ध निश्चित किया गया है।

एतावता श्राद्ध शब्द प्रसिद्ध प्रतिष्ठित प्रामाणिक कोश के अनुसार सांकेतिक पारिभाषिक योगरूढ हो गया है। यौगिक अर्थ अमरकोश कार द्वारा अस्वीकृत है। शब्दार्थ करण में विहित व्याकरण दर्शन सरणि है।इस सरणि परिधि का ही शब्दार्थ मान्य प्रसिद्ध प्रतिष्ठित प्रामाणिक होगा। शक्तिग्रह व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, शिष्ट साहित्य व्यवहार। उक्त सम्पूर्ण सरणि में श्राद्ध शब्द पितृकर्म वाचक है। श्लोक समुदाय से अर्थवत्ता सञ्चरित होती है।आंशिक वाक्य से व्याकरण दर्शन विरुद्ध है- "समुदायो हि यस्य अर्थवान् तस्यैकदेशो निरर्थकः।" समुदाय की अर्थवत्ता है उसका आंशिक रूप निरर्थक है। पितृकर्म से समस्त पूर्वजों का बोध होगा न कि केवल माता, पिता। अथर्ववेद 18.4.78.80 के अनुसार "स्वधा पितृभ्यः पितृषद्भ्यः। स्वधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्यः स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः।" इन मन्त्रों में वहुवचनान्त प्रयोग से समस्त पितरों के लिए श्राद्ध कर्म नितान्त अनिवार्य हितकर कल्याण कर है।

रक्ष्य रक्षक भाव में जो भी आप से सम्बद्ध है या आप एकपक्षीय भी जिससे सम्बद्ध हैं वे समस्त पितर वाचक है। इन सबों केलिए परलोकस्थ शुभता के लिए श्राद्ध तर्पण विधान अनिवार्य है। मुक्तावस्था का यथार्थ ज्ञान पूर्ण

रूप से अदृश्य है। परमात्मा तथा मुक्त पुरुष के अतिरिक्त के ज्ञानातीत तथा तर्कातीत है। इस परिप्रेक्ष्य में करने से लाभ कल्याण संभव है न करने में हानि भी है ,कर्म स्वरूप लोप का भय होगा। शिष्टाचार परिचय अपहत होगा। न्याय शास्त्र में मङ्गलाचार के सार्थक निरर्थक पर लम्बा शास्त्रार्थ हुआ है। उसमें एक उत्तर यह भी शिष्यापि एवं कुर्युः। अतः मङ्गलाचरण का उल्लेख ग्रन्थ में होना चाहिए। इस उदात्त भाव संचारार्थ द्वादिवसीय शास्त्र विहित श्राद्ध में किञ्चिदपि परिवर्तन शिष्टता विघातक होगा।

–डॉ. सुदर्शन शाण्डिल्य, पटना

आदरणीय भवजी, श्राद्ध अंक का संक्षिप्त स्वरूप देखा और मुझे अच्छा लगा। संपादकीय एक दिशा देता है : आब्रह्मस्तंबपर्यन्तम्। श्राद्ध की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में आचार्य जी ने बहुत विस्तार से अपनी बात कही है। श्री राधा किशोरजी और डॉ. सुदर्शन श्रीनिवास जी ने भी शास्त्रीय आधार से श्राद्ध के स्वरूप का दिग्दर्शन किया है। काशीनाथ मिश्र वैश्विक स्तर दिखाते हैं तो कैलाशजी मिश्र जनजातियों में पितर की अवधारणा का सिंहावलोकन प्रस्तुत करते हैं। श्राद्ध और पूर्वजों के प्रति श्रद्धा भारतीय नागरिकता का सुंदर प्रमाण है। कोई कहीं से आया हो, उसने श्राद्ध विधि को अंगीकार किया है। मध्यकाल में गया आदि पितृ श्राद्ध केंद्रों को कर मुक्त करवाने में राजाओं ने बहुत प्रयास किया क्योंकि यह विधि बहुत प्राचीन और सार्थक है। उत्तम विषय पर गंभीर तथा सार्थक सामग्री प्रस्तुत करने के लिए पूरी टीम का धन्यवाद, भवजी तो हमारे हैं ही।

–डॉ. श्रीकृष्ण "जुगनू"।

अद्भुत लेखन.... ज्ञानवर्धक! आदरणीय भवनाथ झा जी एवं समस्त लेखकों को हृदयेन धन्यवाद.आपका अथक परिश्रम का सम्मान हम सब करते हैं। हमारे जैसा न जाने कितने शोधछात्र (जिज्ञासु पाठक) प्रतीक्षारत रहता है।

–आशीष पाण्डेय

इस विषय पर लेख लिखना व संपादन करना बहुत ही दुर्लभ है काफ़ी परिश्रम किया गया है मेरी ओर से संपादक महोदय व आदरणीय लेखकों को बहुत बहुत धन्यवाद।

–श्री संजय गोस्वामी

सदेव की तरह ज्ञान वर्धक और सनातन धर्म, अध्यात्म और संस्कृति को आकाश से स्पर्श कराने वाला अंक। आज भारत जिस राह से गुजर रहा है ऐसे में धर्मायण का हर एक आवश्यकता नहीं अनिवार्यता है। नवीन अंक को आद्योपंत पढ़ने के बाद मुझे अगले अंक की हर क्षण प्रतीक्षा बनी रहती है।

–श्री महेश शर्मा, उज्जैन

***

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(अक्टूबर, 2023ई.)

महावीर आरोग्य संस्थान में मेगा कैंप में 47 लोगों ने किया रक्तदान

महावीर वात्सल्य अस्पताल के ब्लड सेंटर के सहयोग से आरोग्य संस्थान में पहली बार लगा शिविर महावीर मन्दिर न्यास के पहले अस्पताल महावीर आरोग्य संस्थान में शुक्रवार को मेगा रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया। शिविर का उद्घाटन पटना विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति और महावीर आरोग्य संस्थान के शासी निकाय के कार्यकारी अध्यक्ष प्रो रासबिहारी सिंह ने किया। महावीर वात्सल्य अस्पतालके ब्लड सेंटर की ओर से आयोजित इस मेगा कैंप में कुल 47 लोगों ने रक्तदान किया। इस अवसर पर प्रो रासबिहारी सिंह ने कहा कि रक्तदान से इकट्ठा हुए ब्लड का इस्तेमाल मरीजों के इलाज में किया जाएगा। महावीर आरोग्य संस्थान के निदेशक डॉ अभय प्रसाद ने बताया कि रक्तदान से शरीर में स्फूर्ति का संचार होता है। भविष्य में प्रत्येक तिमाही में रक्तदान शिविर का आयोजन महावीर आरोग्य संस्थान में किया जाएगा। उन्होंने बताया कि महावीर वात्सल्य अस्पताल और महावीर कैंसर संस्थान के ब्लड सेंटर के सहयोग और परस्पर समन्वय से रक्तदान शिविरों का नियमित आयोजन किया जाएगा। इस मौके पर महावीर नेत्रालय के निदेशक डॉ. यू.सी. माथूर ने बताया कि महावीर आरोग्य संस्थान में पहली बार इस तरह का रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया है। पहली शिविर में ही रक्तदाताओं और अस्पताल कर्मियों का उत्साह सराहनीय है। इस अवसर पर पीएमसीएच के शिशु रोग विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो डॉ. आर.के.पी. सिन्हा ने कहा कि अस्पताल में मरीजों के रक्त की जरूरत को पूरा करने के लिए ऐसे शिविर नियमित रूप से होने चाहिए। महावीर वात्सल्य अस्पताल स्थित वात्सल्य ब्लड सेंटर के प्रभारी डॉ. एस कौशलेन्द्र ने बताया कि इस शिविर में महावीर कैंसर संस्थान, महावीर पैरामेडिकल संस्थान के भी कर्मियों एवं छात्रों का सहयोग रहा। उन्होंने बताया कि 12 ग्राम से ज्यादा हीमोग्लोबिन वाले ऐसे व्यक्ति जिन्हें कोई गंभीर बीमारी न हो उनकी पूरी स्क्रीनिंग करके रक्तदान कराया जाता है। उन्होंने बताया कि महिलाएँ चार महीना और पुरुष तीन महीने के अंतराल पर रक्तदान कर सकते हैं। स्वस्थ मनुष्य को साल में दो बार रक्तदान करना चाहिए। महावीर आरोग्य संस्थान के पैथोलॉजी विभाग के हेड डॉ लक्ष्मी नारायण सिंह की टीम ने व्यवस्था में सहयोग किया। रक्तदान करनेवालों में विजय कुमार, पवित्र डे, रंजन कुमार, नेत्र रोग विशेषज्ञ डॉ

अश्विनी कुमार, गैस्ट्रोलॉजिस्ट डॉ. दीपक कुमार, मो अफ़ज़ल, इन्द्रजीत सिंह, सुबोध कुमार, संजय प्रजापति, गौरव कुमार दूबे,अनिल कुमार,भास्कर सरकार आदि शामिल हैं। इस अवसर पर अस्पताल के सहायक निदेशक देवेन्द्र शर्मा और प्रशासनिक अधिकारी सत्यानन्द यादव ने सभी का धन्यवाद ज्ञापन किया।

शारदीय नवरात्रि पर महावीर मन्दिर में 24 कलश की स्थापना

शारदीय नवरात्रि पर पटना के महावीर मन्दिर में दो स्थानों पर कलश स्थापन हुआ। मन्दिर के प्रथम तल पर स्थित मां दुर्गा की स्थायी प्रतिमा के समक्ष और मन्दिर परिसर में बने अस्थाई पंडाल में कलश स्थापन कर पूरे विधि-विधान से पूजन सम्पन्न हुआ। दोनों जगहों पर महावीर मन्दिर की ओर से 5-5 कलश स्थापित हुए। जबकि भूतल स्थित अस्थायी पंडाल में भक्तों की ओर से 14 कलश स्थापित किए गये। महावीर मन्दिर के द्वारा यह सुविधा दी गयी है कि यदि कोई व्यक्ति तात्कालिक कारणवश अपने घर में कलशस्थापित कर पूजा-पाठ में असमर्थ हो जाते हैं तो प्रतिवर्ष की उनकी चर्या को चालू रखने के लिए वे निर्धारित शुल्क जमा कर मन्दिर में कलश स्थापित करा सकते हैं। इसके लिए भक्तों की ओर से बुकिंग करायी गयी है। ऐसे यजमान भक्तों को कलश स्थापन के समय संकल्प कराया गया तथा प्रत्येक यजमान के लिए प्रतिदिन एक-एक आवृत्ति दुर्गा सप्तशती का पाठ हुआ। पंडित गजानन जोशी की देखरेख में महावीर मन्दिर के पुरोहित कलश का विधि-विधान से पूजन के बाद दुर्गा सप्तशती का पाठ किया गया।

महावीर मन्दिर के भूतल स्थित परिसर में अस्थायी पंडाल में मां दुर्गा की मिट्टी की प्रतिमा भी रखी गयी। यह परम्परा लगभग 25 वर्षों से चलती रही है। शारदीय नवरात्रि पर पूरे 9 दिनों तक प्रथम तल स्थित मां दुर्गा की स्थायी प्रतिमा और भूतल स्थित अस्थायी प्रतिमाओं के समक्ष महावीर मन्दिर की ओर से भी दुर्गा सप्तशती का पाठ हुआ। महावीर मन्दिर के पुरोहित पंडित जटेश झा, पंडित गजानन जोशी, पंडित रामदेव पांडेय, पंडित माधव उपाध्याय, पंडित कमलाकान्त ओझा और पंडित विजय तिवारी ने कलश स्थापन-पूजन और पाठ किया। महावीर मन्दिर की ओर से कलश-स्थापन और पूजन के अवसर पर यजमान के रूप में नैवेद्यम् प्रभारी आर. शेषाद्रि ने पूजन किया।

दिनांक 23 की सन्ध्या में सम्पूर्ण दुर्गा सप्तशती के मन्त्रों से हवन कार्यक्रम के साथ नवरात्र की पूजा सम्पन्न हुई तथा विजया दशमी के दिन अस्थायी प्रतिमा का विसर्जन हुआ।

–महावीर मन्दिर के मीडिया प्रभारी श्री विवेक विकास की लेखनी से सम्पादित

व्रत-पर्व

कार्तिक, 2080 वि. सं. (-29 अक्टूबर-27 नवम्बर, 2023ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा, ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

1. **धन्वन्तरि-जयन्ती, प्रदोष त्रयोदशी व्रत-** कार्तिक कृष्ण द्वादशी उपरान्त त्रयोदशी, दिनांक 10 नवम्बर 2023 ई.।
2. **हनुमान-जयन्ती, प्रदोष चतुर्दशी व्रत-** कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी उपरान्त चतुर्दशी, दिनांक 11 नवम्बर, 2023 ई.।
3. **दीपावली, लक्ष्मीपूजा, श्रीकालीपूजा-** कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी उपरान्त अमावस्या, दिनांक 12 नवम्बर 2023 ई.।
4. **स्नानदानादि अमावस्या, सोमवती अमावस्या-** कार्तिक कृष्ण अमावस्या, दिनांक 13 नवम्बर 2023 ई.।
5. **गोवर्द्धनपूजा, अन्नकूट-** कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा, दिनांक 14 नवम्बर 2023 ई.।
6. **भ्रातृद्वितीया, श्रीचित्रगुप्तपूजा-** कार्तिक शुक्ल द्वितीया, दिनांक 15 नवम्बर, 2022 ई.
7. **श्रीगणेश चतुर्थी व्रत, छठ व्रत पर्व का माछ-मरूवा-वर्जित-** कार्तिक शुक्ल तृतीया उपरि चतुर्थी, दिनांक 16 नवम्बर 2023 ई.।
8. **छठ व्रत पर्व का अरवा-अरबाइन-** दिनांक 17 नवम्बर, 2023ई.- छठ व्रत पर्व का खरना- दिनांक 18 नवम्बर, 2023ई.
9. **छठ व्रत पर्व का सन्ध्याकालिक अर्घ्यदान-** कार्तिक शुक्ल पंचमी उपरि षष्ठी, दिनांक 19 नवम्बर 2022 ई.
10. **छठ व्रत पर्व का प्रातःकालिक अर्घ्यदान, पारण एवं सामापूजा आरम्भ-** कार्तिक शुक्ल सप्तमी, दिनांक 20 अक्टूबर 2023ई. (इस वर्ष सुबह का अर्घ्य सूर्योदय से पूर्व अरुणोदय काल में होना चाहिए। यह स्थिति 2004ई. में भी हुई थी।
11. **गोपाष्टमी-** कार्तिकशुक्ल अष्टमी, दिनांक 20 नवम्बर 2023 ई
12. **अक्षयनवमी, गंगास्नानदान-** कार्तिक शुक्ल नवमी, दिनांक 21 नवम्बर 2023 ई.
13. **देवोत्थान एकादशी व्रत, (सबके लिए)-** कार्तिक शुक्ल एकादशी, दिनांक 23 नवम्बर 2023 ई.
14. **तुलसी विवाह, प्रदोष त्रयोदशी व्रत,-** कार्तिकशुक्ल द्वादशी, दिनांक 24 नवम्बर 2023 ई.
15. **प्रदोष चतुर्दशी व्रत-** कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी उपरि चतुर्दशी रविवार, दिनांक 25 नवम्बर 2023 ई.
16. **पूर्णिमा व्रत, सामा विसर्जन (मिथिला में)-** कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी उपरि पूर्णिमा, दिनांक 26 नवम्बर 2023 ई.
17. **गंगास्नान-दानादि पूर्णिमा, गुरु नानक जयन्ती, निम्बार्क-जयन्ती, सोनपुर मेला, हरिहरक्षेत्र स्नान-** कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा, दिनांक 27 नवम्बर 2023 ई.

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

हनुमान-जयन्ती के उपलक्ष्य में नवाह पाठ के प्रारम्भ में दिनांक 3 नवम्बर को कलशस्थापन

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna-org/dharmayan/ पर नि:शुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।